प्रारंभिक भारतीय वास्तुकला: सिंधु घाटी सभ्यता से मौर्य काल तक वास्तुशिल्प का ऐतिहासिक विकास

सारांश

यह शोध-निबंध प्रारंभिक भारतीय वास्तुकला के क्रमिक विकास का एक गहन विश्लेषण प्रस्तुत करता है, जो ईसा पूर्व तीसरी सहस्राब्दी में सिंधु घाटी सभ्यता के परिष्कृत शहरी नियोजन से लेकर ईसा पूर्व तीसरी शताब्दी में मौर्य साम्राज्य की राज्य-संरक्षित स्मारक वास्तुकला तक फैला है। रिपोर्ट का मुख्य तर्क यह है कि वास्तुकला के विकास को सामग्री (अस्थायी से स्थायी), उद्देश्य (व्यावहारिक-शहरी से राजसी-धार्मिक), और संरक्षण (सामुदायिक से राजकीय) के संदर्भ में समझा जाना चाहिए। विशेष रूप से, यह शोध हड़प्पा और मौर्य काल के बीच लगभग 1500 वर्षों के उस "अज्ञात" कालखंड को उजागर करता है, जब लकड़ी और अन्य नाशवान सामग्रियों के व्यापक उपयोग के कारण भौतिक साक्ष्य दुर्लभ हैं, और यह दर्शाता है कि कैसे मौर्य काल में इस परंपरा को पत्थर में रूपांतरित कर एक नई, स्थायी शैली का जन्म हुआ।

1. परिचय: भारतीय वास्तुकला का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

वास्तुकला को केवल भवन-निर्माण के रूप में नहीं देखा जाना चाहिए, बल्कि इसे किसी सभ्यता के सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक मूल्यों के मूर्त रूप के रूप में समझा जाना चाहिए। यह एक समाज की संगठनात्मक क्षमता, तकनीकी ज्ञान और सौंदर्यबोध का प्रत्यक्ष प्रमाण है। इस रिपोर्ट का उद्देश्य भारतीय उपमहाद्वीप में वास्तुकला के प्रारंभिक विकास का शोधपरक विश्लेषण करना है, जिसमें सिंधु घाटी सभ्यता (लगभग 2500 ई.पू.) से लेकर मौर्य साम्राज्य (लगभग 185 ई.पू.) तक के कालखंड को शामिल किया गया है। यह अध्ययन इस अवधि के दौरान हुए प्रमुख वास्तुशिल्प परिवर्तनों, तकनीकों में नवाचारों और इन पर पड़ने वाले प्रभावों का गहन मूल्यांकन करता है।

इस रिपोर्ट में, वास्तुकला के विकास को तीन प्रमुख, किंतु आपस में जुड़े हुए, चरणों में विभाजित किया गया है:

1. **प्रथम नगरीय क्रांति:** सिंधु घाटी सभ्यता की नगर-केंद्रित और सामुदायिक वास्तुकला, जो एक सुनियोजित नागरिक जीवन पर केंद्रित थी।
2. **संक्रमण काल:** वैदिक और महाजनपद काल की ग्रामीण और अस्थायी वास्तुकला, जिसमें स्थायी भौतिक अवशेषों का अभाव है, लेकिन इसने परवर्ती वास्तुकला के लिए वैचारिक आधार प्रदान किया।
3. **राजसी अभिव्यक्ति का उदय:** मौर्य काल की राज्य-संरक्षित, स्मारकीय और स्थायी पत्थर की वास्तुकला, जिसने राजनीतिक शक्ति और धार्मिक प्रचार के माध्यम के रूप में कार्य किया।

2. अध्याय 1: सिंधु घाटी सभ्यता (2500 ई.पू. - 1750 ई.पू.): भारत की प्रथम नगरीय वास्तुकला

सिंधु घाटी सभ्यता, जिसे हड़प्पा सभ्यता के नाम से भी जाना जाता है, भारतीय वास्तुकला के प्राचीनतम और सबसे प्रभावशाली नमूनों में से एक है। हड़प्पा, मोहनजो-दारो, रोपड़, कालीबंगा और लोथल जैसे स्थलों पर की गई खुदाई से इस सभ्यता के उन्नत वास्तु कौशल और शहरी नियोजन का स्पष्ट प्रमाण मिलता है, जो लगभग 5000 वर्ष पहले तीसरी सहस्राब्दी ईसा पूर्व में निर्माण गतिविधियों का एक गहन केंद्र थे [1]।

उत्कृष्ट नगर नियोजन और शहरी वास्तुकला

सिंधु सभ्यता की शहरी वास्तुकला की सबसे विशिष्ट विशेषता इसका उत्कृष्ट नगर नियोजन था [2]। शहर एक नियमित ग्रिड पैटर्न में समांतर चतुर्भुज रूप में स्थित थे, जहाँ सड़कें एक-दूसरे को समकोण पर काटती थीं [2]। यह प्रणाली एक सुनियोजित लेआउट को दर्शाती है, जो संभवतः किसी केंद्रीकृत नागरिक प्रशासन द्वारा नियंत्रित था। अधिकांश शहरों को दो प्रमुख भागों में बांटा गया था: एक ऊपरी 'गढ़' और एक निचला 'शहर' [2]। गढ़ में सार्वजनिक और अनुष्ठानिक महत्व की इमारतें शामिल थीं, जैसे विशाल स्नानागार और अन्न

भंडार, जबकि निचले शहर में आवासीय संरचनाएं थीं [2]। घरों के दरवाजे और खिड़कियाँ लकड़ी और चटाई से बने होते थे, जिनमें कभी-कभी नक्काशीदार या रंगे हुए डिज़ाइन होते थे [2]।

सामग्री, तकनीक और मानकीकरण

इस सभ्यता की वास्तुकला में मानकीकरण एक प्रमुख विशेषता थी। निर्माण के लिए बड़े पैमाने पर पक्की ईंटों का उपयोग किया गया था, जिनके आयाम (4x2x1) एक निर्धारित अनुपात (1:2:4) में थे [2]। यह मानकीकरण उस काल की उन्नत संगठनात्मक क्षमता और बड़े पैमाने पर उत्पादन को दर्शाता है। दीवारों के निर्माण में "इंग्लिश बॉन्ड शैली" (English Bond Style) का प्रयोग किया गया था, जिसमें भार वहन करने की क्षमता को अधिकतम करने के लिए ईंटों को वैकल्पिक व्यवस्था में रखा जाता था [2]। इस सभ्यता में पत्थर की इमारतों की अपेक्षा ईंटों का अधिक उपयोग किया गया, जो एक महत्वपूर्ण तकनीकी पसंद को दर्शाता है [2]।

जलापूर्ति और जल-निकास प्रणाली: वास्तुकला का सामाजिक पहलू

सिंधु घाटी सभ्यता की सबसे उत्कृष्ट और अभिनव उपलब्धि उसकी जल प्रबंधन प्रणाली थी। मोहनजो-दारो की पहचान उसकी पक्की-घूमर ईंटों और ढकी हुई नालियों से है, जो किसी भी समकालीन सभ्यता से बेहतर थी [3]। शहर की नालियाँ 30 से 50 सेंटीमीटर गहरी और 20 से 30 सेंटीमीटर चौड़ी थीं, जिन्हें जोड़ने के लिए जिप्सम का प्रयोग किया गया था और वे ग्रिड पद्धति पर आधारित थीं [3]। घरों में निजी स्नानागार और कुएँ थे; अनुमान है कि मोहनजो-दारो में लगभग 700 कुएँ थे [4]।

मोहनजो-दारो का विशाल स्नानागार इस जल-संस्कृति का एक उत्कृष्ट उदाहरण है। 12 मीटर की माप वाली इस संरचना को कोलतार (डामर) का प्रयोग कर जलरोधी बनाया गया था [2]। एक बड़े कुएँ से इसमें पानी की आपूर्ति होती थी और निकासी के लिए एक कॉरबेल्ड नाली का भी प्रावधान था [2]।

यह वास्तुकला एक सामुदायिक-केंद्रित और व्यावहारिक दृष्टिकोण का प्रतिनिधित्व करती है। इसका नगर नियोजन और जल प्रबंधन एक केंद्रीकृत नागरिक प्रशासन की उपस्थिति को दर्शाता है, जिसका प्राथमिक उद्देश्य निवासियों के लिए जीवन को व्यवस्थित और सुविधाजनक बनाना था। यह परवर्ती कालों, विशेष रूप से मौर्य काल, की वास्तुकला से एक महत्वपूर्ण वैचारिक अंतर है, जहाँ इमारतों को शासक की शक्ति और महिमा को प्रदर्शित करने के लिए बनाया गया था, न कि सामुदायिक कल्याण के लिए।

3. अध्याय 2: वैदिक काल (1500 ई.पू. - 600 ई.पू.): वास्तुकला में संक्रमण और अंतराल

हड़प्पा सभ्यता के पतन और मौर्य साम्राज्य के उदय के बीच लगभग 1500 वर्षों का एक महत्वपूर्ण अंतराल है, जिसके भौतिक अवशेष बहुत कम उपलब्ध हैं [5]। यह अवधि भारतीय वास्तुकला के इतिहास में एक "अंधकार युग" प्रतीत होती है, लेकिन वास्तव में यह एक महत्वपूर्ण संक्रमण काल था।

अस्थायी वास्तुकला के साक्ष्य

वैदिक काल का समाज मुख्य रूप से एक देहाती और ग्रामीण समाज था, जो हड़प्पा के शहरी जीवन के विपरीत था [8]। इस काल के घर लकड़ी, मिट्टी, बांस और घास-फूस जैसी अस्थायी और नाशवान सामग्रियों से बने होते थे, जो समय के साथ नष्ट हो गए [8]। वैदिक साहित्य में कुशल कारीगरों (

त्वष्ट्रा और ऋभू) का उल्लेख मिलता है, जो लकड़ी का उपयोग करके विभिन्न वस्तुओं का निर्माण करते थे, जिससे यह प्रमाणित होता है कि वास्तुकला का ज्ञान मौजूद था, भले ही उसका माध्यम अस्थायी था [9]।

पर्सी ब्राउन जैसे विद्वानों ने इन झोपड़ियों की अनुमानित रूपरेखा प्रस्तुत की है। उनके अनुसार, ये झोपड़ियाँ मधु-मक्खियों के छत्तों जैसी गोल या अंडाकार आकार की होती थीं। इनकी दीवारें लचीली टहनियों से बनाई जाती थीं, जिनके ऊपर घास या पत्तों से गुंबदाकार छत बनाई जाती थी [9]। यह वास्तुकला की एक प्रारंभिक और मौलिक अवस्था को दर्शाती है।

धार्मिक और सामाजिक प्रभाव

इस काल की वास्तुकला पर धार्मिक और सामाजिक जीवन का गहरा प्रभाव था। प्रारंभिक वैदिक धर्म में प्रतिमा-पूजन और मंदिर निर्माण की कोई स्पष्ट परंपरा नहीं थी। धार्मिक अनुष्ठान, जैसे यज्ञ और हवन, खुले स्थानों पर किए जाते थे, और यज्ञशाला ही धार्मिक गतिविधियों का प्रमुख केंद्र था [8]।

यह अवधि वास्तुकला के विकास में एक प्रतिगामी कदम नहीं थी, बल्कि एक महत्वपूर्ण "संक्रमण काल" थी। यह सामग्री और तकनीक में एक मूलभूत बदलाव को दर्शाता है: सिंधु की स्थायी ईंट से अस्थायी लकड़ी की ओर, और फिर मौर्य काल में स्थायी पत्थर की ओर वापसी। बाद के मौर्य काल में, यह अस्थायी लकड़ी की वास्तुकला ही पत्थर की वास्तुकला के लिए एक खाका बनी, जैसा कि बराबर की गुफाओं में स्पष्ट है। इस प्रकार, वैदिक काल ने वास्तुकला के "रूप" को तो विकसित किया, भले ही उसका "माध्यम" नाशवान था।

4. अध्याय 3: मौर्य काल (322 ई.पू. - 185 ई.पू.): पत्थर में राजसी अभिव्यक्ति का उदय

मौर्य काल भारतीय कला और वास्तुकला के इतिहास में एक नया अध्याय है, जहाँ कलात्मक गतिविधियों का इतिहास निश्चित रूप से आरंभ होता है [5]। इस साम्राज्य की राजनीतिक स्थिरता, आर्थिक समृद्धि और शासकों के संरक्षण ने वास्तुकला को उपयोगिता से हटाकर राजसी शक्ति, धार्मिक प्रचार और राजनीतिक स्थिरता का प्रतीक बना दिया। इस युग में कला के दो प्रमुख रूप देखने को मिलते हैं: एक राज्य-प्रायोजित स्मारकीय कला, और दूसरी लोक कला [6]।

राजसी संरचनाएँ: पाटलिपुत्र का महल

मौर्य शासकों की भव्यता को दर्शाने वाले महत्वपूर्ण उदाहरणों में पाटलिपुत्र में स्थित चंद्रगुप्त मौर्य का महल शामिल है। यूनानी राजदूत मेगास्थनीज के विवरण के अनुसार, यह महल लकड़ी का बना था और दुनिया के सबसे सुंदर महलों में से एक था। पाटलिपुत्र नगर भी चारों ओर से लकड़ी की एक ऊँची दीवार और एक गहरी खाई से घिरा था, जिसमें 64 द्वार थे [6]।

पुरातत्वीय साक्ष्य मेगास्थनीज के विवरण की पुष्टि करते हैं। पटना के निकट कुम्हरार और बुलंदीबाग में हुई खुदाई में लकड़ी के स्तंभों और लकड़ी की चहारदीवारी के प्रमाण मिले हैं, जो यह दर्शाते हैं कि पाटलिपुत्र की सुरक्षात्मक दीवारें और महल लकड़ी के बने थे [12]। कुम्हरार में सबसे महत्वपूर्ण खोज "80-स्तंभों वाला सभागार" (80-Pillared Hall) है, जिसे सम्राट अशोक से जोड़ा जाता है। यहाँ बलुआ पत्थर के स्तंभों के अवशेष मिले हैं, जिन पर मौर्यकालीन चमक मौजूद थी [14]। ये अवशेष एक महत्वपूर्ण तकनीकी और कलात्मक संक्रमण को प्रमाणित करते हैं। मेगास्थनीज के समय से अशोक के समय तक, वास्तुकला ने पूर्णतः लकड़ी से हटकर लकड़ी और पत्थर के संयोजन की ओर कदम बढ़ाया। कुम्हरार के पत्थर के स्तंभ इस बात के स्पष्ट संकेत हैं कि मौर्य शासक अब स्थायी सामग्री के महत्व को समझ रहे थे और अपनी राजसी भव्यता को पत्थर में अभिव्यक्त करना सीख रहे थे।

धार्मिक संरचनाएँ: वास्तुकला के माध्यम से धर्म का प्रसार

मौर्य काल में बौद्ध धर्म के प्रसार के लिए कई विशाल संरचनाओं का निर्माण किया गया।

- **अशोक के एकाश्मक स्तंभ:** ये मौर्यकालीन कला के सर्वोत्कृष्ट नमूने हैं। ये चुनार के बलुआ पत्थर से बने एकाश्मक स्तंभ थे, जिन पर एक अद्भुत चिकनाई और चमक वाली पॉलिश की गई थी [5]। इन स्तंभों पर अशोक के शिलालेख अंकित थे, जो धम्म के प्रचार और राज्य की पहुँच को दर्शाते थे [17]।
- **स्तूप:** ये बौद्ध धर्म के प्रसार का सबसे प्रमुख माध्यम थे। स्तूप एक गुंबद के आकार की ठोस संरचनाएं थीं, जो बुद्ध या अन्य पवित्र व्यक्तियों के अवशेषों को रखने के लिए बनाई गई थीं [18]। सांची का महान स्तूप इसका एक उत्कृष्ट उदाहरण है, जिसका निर्माण मूल रूप से अशोक ने करवाया था [6]।

- **चट्टानों को काटकर बनाई गई गुफाएँ (रॉक-कट आर्किटेक्चर):** मौर्य काल में एक नई और अनूठी शैली का जन्म हुआ: चट्टानों को काटकर कंदराओं का निर्माण[6]। बिहार में गया के निकट स्थित बराबर और नागार्जुनी की पहाड़ियाँ इस शैली का सबसे प्रारंभिक उदाहरण हैं[20]। इन गुफाओं का निर्माण सम्राट अशोक और उनके पौत्र दशरथ ने आजीवक संप्रदाय के भिक्षुओं के निवास के लिए करवाया था[20]।

बराबर की गुफाएँ लकड़ी से पत्थर में संक्रमण का सबसे स्पष्ट और उत्कृष्ट उदाहरण हैं। लोमश ऋषि गुफा का मेहराबदार प्रवेश द्वार और सुदामा गुफा की छत लकड़ी की झोपड़ियों और छप्परों की संरचना का पत्थर में सटीक अनुकरण करती हैं[9]। यह दर्शाता है कि मौर्य कारीगरों ने अपनी परिचित लकड़ी की तकनीकों को एक नए, स्थायी माध्यम में सफलतापूर्वक स्थानांतरित किया।

5. अध्याय 4: निष्कर्ष और विकास का समग्र विश्लेषण

प्रारंभिक भारतीय वास्तुकला का विकास सिंधु घाटी की शहरी भव्यता से लेकर मौर्य काल की राजसी स्मारकीयता तक एक क्रमिक और बहुआयामी यात्रा को दर्शाता है। यह यात्रा केवल शैलीगत परिवर्तनों तक सीमित नहीं थी, बल्कि इसमें सामग्री, उद्देश्य और संरक्षण के स्रोतों में मूलभूत बदलाव भी शामिल थे।

प्रारंभिक भारतीय वास्तुकला: एक तुलनात्मक विश्लेषण

काल	मुख्य विशेषताएँ	प्रमुख सामग्री	संरक्षण का स्रोत	प्रमुख संरचनाएँ
सिंधु घाटी सभ्यता	ग्रिड-पैटर्न नगर नियोजन, उन्नत जल प्रबंधन	पक्की हुई ईंटें, लकड़ी	केंद्रीकृत नागरिक प्रशासन	महान स्नानागार, शहरी घर, ढकी हुई नालियाँ
वैदिक काल	ग्रामीण और देहाती जीवन, अस्थायी वास्तुकला	लकड़ी, बाँस, मिट्टी, घास-फूस	जनजातीय/सामुदायिक	गोलाकार/अंडाकार झोपड़ियाँ, यज्ञशाला
मौर्य काल	स्मारकीय और राज्य-प्रायोजित कला	स्थायी पत्थर, लकड़ी	राज्य-संरक्षण (सम्राट)	एकाश्मक स्तंभ, स्तूप, चट्टानों को काटकर बनी गुफाएँ

विकास की प्रमुख धाराएँ और अंतर्निहित कारण

1. **सामग्री का परिवर्तन:** वास्तुकला की यह यात्रा ईंटों (सिंधु) से लकड़ी (वैदिक) और अंततः स्थायी पत्थर (मौर्य) की ओर महत्वपूर्ण तकनीकी और कलात्मक छलांग को दर्शाती है। यह परिवर्तन मौर्य कारीगरों की तकनीकी विशेषज्ञता का प्रमाण है, जिन्होंने अपनी परिचित लकड़ी की तकनीकों को पत्थर में सफलतापूर्वक रूपांतरित किया।
2. **संरक्षण का स्रोत:** वास्तुकला का संरक्षण समुदाय-आधारित नियोजन से राज्य-प्रायोजित स्मारक निर्माण की ओर बदल गया। मौर्य साम्राज्य की राजनीतिक स्थिरता और आर्थिक समृद्धि ने शासकों को ऐसी विशाल और स्थायी संरचनाओं के निर्माण के लिए प्रेरित किया, जो उनके गौरव और शक्ति का प्रदर्शन कर सकें[5]।

3. **धार्मिक प्रेरणा:** बौद्ध और आजीवक जैसे नए धर्मों के उदय ने वास्तुकला को एक नया और शक्तिशाली उद्देश्य प्रदान किया - धर्म और नैतिकता का प्रसार। इसने विशाल स्तूपों, स्तंभों और गुफाओं के निर्माण को प्रेरित किया, जो केवल निवास या उपयोगिता के स्थान नहीं थे, बल्कि धार्मिक और वैचारिक केंद्रों के रूप में कार्य करते थे [17]।

भारतीय स्थापत्य पर इस काल की विरासत

सिंधु घाटी सभ्यता ने भारत में शहरी नियोजन की नींव रखी, जबकि मौर्यकालीन कला और वास्तुकला ने बाद के शुंग, कुषाण और गुप्त राजवंशों के लिए एक मिसाल कायम की [18]। मौर्यकालीन स्तंभों और स्तूपों का डिज़ाइन पूरे एशिया में बौद्ध कला को प्रभावित करता रहा [18]। पत्थर पर की गई उत्कृष्ट पॉलिश, जो मौर्यकालीन कारीगरी का प्रतीक थी [5], बाद के स्थापत्य में भी प्रेरणा का स्रोत बनी। इस प्रकार, प्रारंभिक भारतीय वास्तुकला ने न केवल एक तकनीकी विकास को दर्शाया, बल्कि यह सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक परिवर्तनों का एक जीवंत इतिहास भी प्रस्तुत करती है।

डॉ. राकेश मोहन नौटियाल

सिंधु घाटी से मौर्य काल तक: भारतीय वास्तुकला के क्रमिक विकास की एक जादुई यात्रा

1. परिचय: पत्थर और लकड़ी की कहानी

वास्तुकला को केवल 'भवन निर्माण' की प्रक्रिया समझना एक भूल होगी; वास्तव में, यह किसी भी सभ्यता के सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक मूल्यों का **'मूर्त रूप'** होती है। यह समाज की संगठनात्मक क्षमता, तकनीकी ज्ञान और उसके सौंदर्यबोध का सीधा प्रमाण है। भारतीय उपमहाद्वीप में वास्तुकला का विकास सामग्री के उपयोग और उद्देश्य के आधार पर एक लंबी और क्रमिक यात्रा रही है। इस यात्रा को हम तीन प्रमुख चरणों में देख सकते हैं: **प्रथम नगरीय क्रांति** (सिंधु घाटी की सामुदायिक वास्तुकला), **संक्रमण काल** (वैदिक युग की अस्थायी संरचनाएं), और **राजसी अभिव्यक्ति का उदय** (मौर्य काल की स्मारकीय भव्यता)। यह यात्रा केवल मिट्टी से पत्थर तक पहुँचने की कहानी नहीं है, बल्कि यह उपयोगिता से भव्यता और सामुदायिक कल्याण से राजसी महिमा की ओर बढ़ने का एक जीवंत इतिहास है।

यह गौरवशाली यात्रा हमें भारत की पहली और सबसे व्यवस्थित शहरी व्यवस्था की ओर ले जाती है, जहाँ ईंटों और ग्रिड नियोजन ने भविष्य की सभ्यताओं के लिए एक मानक स्थापित किया।

2. सिंधु घाटी सभ्यता: ईंटों और ग्रिड नियोजन का चमत्कार

हड़प्पा और मोहनजो-दारो जैसी प्राचीन बस्तियाँ आज से लगभग 5000 वर्ष पहले उन्नत वास्तु कौशल का केंद्र थीं। यहाँ की वास्तुकला का मुख्य दर्शन 'व्यावहारिकता' और 'नागरिक सुविधा' पर आधारित था। शहरों का विभाजन एक विशिष्ट सामाजिक व्यवस्था को दर्शाता है: एक ऊँचा **'गढ़' (Citadel)** सार्वजनिक इमारतों के लिए और एक **'निचला शहर'** आवासीय क्षेत्र के लिए।

- **निर्माण सामग्री और मानकीकरण:** यहाँ वास्तुकला में मानकीकरण का अद्भुत स्तर मिलता है। निर्माण में **1:2:4 के निश्चित अनुपात** वाली पक्की ईंटों का उपयोग किया गया, जिनके सटीक आयाम **4x2x1** (लंबाई, चौड़ाई, मोटाई) थे। दीवारों को अधिकतम मजबूती देने के लिए **"इंग्लिश बॉन्ड शैली"** (वैकल्पिक परतों में ईंटें लगाना) का प्रयोग किया गया था।
- **प्रारंभिक संकेत:** घरों के दरवाजे और खिड़कियों में लकड़ी और चटाई का उपयोग होता था, जो यह दर्शाता है कि लकड़ी का उपयोग निर्माण परंपरा में शुरू से ही शामिल था।

वास्तुकला का सामुदायिक और सामाजिक पहलू: सिंधु सभ्यता की जल प्रबंधन प्रणाली किसी भी समकालीन सभ्यता से कहीं अधिक उन्नत थी:

- **विशाल स्नानागार (Great Bath):** मोहनजो-दारो की इस भव्य संरचना को बिटुमेन (प्राकृतिक डामर) के लेप से जलरोधी बनाया गया था, जो उनकी रासायनिक समझ को दर्शाता है।
- **ढकी हुई नालियाँ:** स्वच्छता के प्रति अटूट समर्पण दिखाते हुए, यहाँ की नालियाँ 30-50 सेमी गहरी और 20-30 सेमी चौड़ी थीं, जिन्हें जोड़ने के लिए जिप्सम का प्रयोग किया गया था।

- **जलापूर्ति:** अकेले मोहनजो-दारो में लगभग 700 कुएँ पाए गए हैं, जो नागरिक प्रशासन की कुशलता का प्रमाण हैं।

इस अद्भुत शहरी व्यवस्था के अंत के बाद एक ऐसा युग आया जहाँ ईंटों का प्रभाव कम हुआ और कारीगरों ने अपना सारा कौशल लकड़ी की कलाकारी में झोंक दिया।

3. वैदिक 'अंधकार युग' का रहस्य: लकड़ी की कलाकारी

हड़प्पा के पतन और मौर्यों के उदय के बीच का कालखंड अक्सर भौतिक अवशेषों की कमी के कारण "अंधकार युग" कहा जाता है, लेकिन एक इतिहासकार की दृष्टि में यह एक महत्वपूर्ण **"संक्रमण काल" (Transition Period)** था। इस काल का समाज ग्रामीण और देहाती था, जिसने स्थायी ईंटों के बजाय लकड़ी, बाँस और मिट्टी को अपना माध्यम बनाया।

वैदिक साहित्य में **त्वष्ट्रा और ऋभू** जैसे दिव्य कारीगरों का उल्लेख मिलता है, जो लकड़ी की बारीकियों में माहिर थे। महान इतिहासकार पर्सी ब्राउन ने इस काल की झोपड़ियों को **मधु-मक्खी के छत्ते** जैसी गोल या अंडाकार संरचनाओं के रूप में वर्णित किया है, जिनकी छतें टहनियों और घास-फूस से बनी होती थीं।

वास्तुकला का तुलनात्मक विश्लेषण:

विशेषता	सिंधु घाटी सभ्यता	वैदिक काल
कालखंड	नगरीय (Urban)	ग्रामीण/देहाती (Rural)
प्रमुख सामग्री	मानकीकृत पक्की ईंटें (4x2x1), पत्थर	लकड़ी, बाँस, मिट्टी, घास-फूस
समाज का स्वरूप	संगठित नागरिक प्रशासन	जनजातीय और सामुदायिक

इन्हीं अस्थायी लकड़ी की झोपड़ियों और उनके मेहराबदार डिज़ाइनों ने भविष्य के स्थायी पत्थर के स्मारकों के लिए एक ऐसा 'ब्लूप्रिंट' तैयार किया, जिसे सदियों बाद मौर्य कारीगरों ने अमर कर दिया।

4. मौर्य काल: राजसी शक्ति और पत्थर का उदय

मौर्य साम्राज्य के आगमन के साथ भारतीय वास्तुकला में एक नया स्वर्ण अध्याय जुड़ा। यह वह समय था जब वास्तुकला 'राजसी शक्ति' और 'धार्मिक नैतिकता' के प्रसार का सबसे सशक्त माध्यम बनी।

- **राजकीय कला (Court Art):**
    - **पाटलिपुत्र की भव्यता:** मेगास्थनीज के विवरण और कुम्हरार की खुदाई से पता चलता है कि पाटलिपुत्र का महल लकड़ी का बना था और सुंदरता में बेजोड़ था। कुम्हरार में मिला **80-स्तंभों वाला विशाल सभागार** लकड़ी से पत्थर की ओर बढ़ते संक्रमण का सबसे बड़ा भौतिक साक्ष्य है।

- **अशोक के एकाश्मक स्तंभ:** चुनार के बलुआ पत्थर से बने ये स्तंभ मौर्यकालीन कारीगरी का शिखर हैं। इन पर की गई विशेष **'मौर्यकालीन पॉलिश'** एक ऐसा रहस्य है जिसकी चमक आज भी शीशे की तरह फीकी नहीं पड़ी है।

- **लोक कला (Folk Art):** राजकीय संरक्षण से इतर स्थानीय कलाकारों ने यक्ष-यक्षिणी की प्रतिमाओं के माध्यम से अपनी कला को जीवित रखा।

मौर्य काल की सबसे बड़ी क्रांति यह थी कि अब लकड़ी के पुराने और परिचित डिज़ाइनों को पहाड़ों को काटकर पत्थरों में स्थायी रूप दिया जा रहा था।

5. 'लकड़ी से पत्थर' का रूपांतरण: बराबर की गुफाओं का साक्ष्य

मौर्य काल की सबसे विशिष्ट उपलब्धि **"रॉक-कट आर्किटेक्चर"** का जन्म था। बिहार की **बराबर और नागार्जुनी पहाड़ियों** में सम्राट **अशोक** और उनके पौत्र **दशरथ** द्वारा निर्मित गुफाएँ इस बात का साक्ष्य हैं कि कारीगरों ने पत्थर के साथ काम करते हुए भी एक लकड़ी के कारीगर की तरह ही सोचा।

"लकड़ी का पत्थर में रूपांतरण" - प्रमुख इनसाइट्स:

1. **तकनीकी स्थानांतरण:** लोमश ऋषि और सुदामा गुफाओं के मेहराबदार प्रवेश द्वार लकड़ी के ढांचे की सटीक नकल हैं। कारीगरों ने परिचित लकड़ी की तकनीकों को नए, स्थायी माध्यम में सफलतापूर्वक स्थानांतरित किया।

2. **छत की बनावट:** गुफाओं की आंतरिक छतें इस तरह उकेरी गई हैं जैसे वे लकड़ी की गोल झोपड़ियों की घास-फूस वाली छप्पर हों।

3. **कलात्मक निरंतरता:** यह रूपांतरण केवल नकल नहीं थी, बल्कि यह पत्थरों को 'अमर' करने की कला थी, जहाँ पुराने लकड़ी के ज्ञान को ही पत्थर जैसे कठिन माध्यम पर लागू किया गया।

यह ऐतिहासिक निरंतरता दर्शाती है कि कैसे भारतीय वास्तुकला ने अपनी जड़ों को छोड़े बिना माध्यम को बदल लिया।

6. निष्कर्ष: भारतीय वास्तुकला की विरासत

सिंधु घाटी की ईंटों से लेकर मौर्यों के पॉलिश किए हुए पत्थरों तक की यह यात्रा केवल निर्माण सामग्री का बदलाव नहीं थी। यह एक सभ्यता की प्राथमिकताओं का परिवर्तन था—जहाँ शुरुआत 'सामुदायिक कल्याण' से हुई और समापन 'राजसी शक्ति' एवं 'धार्मिक नैतिकता' (धम्म) के वैश्विक संदेश में हुआ।

महत्वपूर्ण निष्कर्ष (Key Takeaways)

- **तकनीकी यात्रा:** ईंट (सिंधु) → लकड़ी (वैदिक) → पत्थर (मौर्य) का क्रमिक विकास।

- **उद्देश्य का बदलाव:** नागरिक सुविधा से राजसी भव्यता और धार्मिक स्मारकीयता की ओर संक्रमण।

- **अटूट परंपरा:** वैदिक काल की लकड़ी की झोपड़ियाँ ही मौर्यकालीन रॉक-कट वास्तुकला का आधार बनीं।
- **कारीगरी का प्रतीक:** मौर्यकालीन पॉलिश और एकाश्मक स्तंभों ने भारतीय स्थापत्य को स्थायी पहचान दी।

भारतीय वास्तुकला एक अटूट और निरंतर चलने वाली परंपरा है। सिंधु का नगर नियोजन, वैदिक काल की कल्पना और मौर्यों की भव्यता मिलकर आज भी भारतीय स्थापत्य की आत्मा का निर्माण करते हैं। आज भी हमारे मंदिरों के ऊंचे शिखर और मेहराबों के डिज़ाइन में उन्हीं प्राचीन लकड़ी की झोपड़ियों का 'DNA' सुरक्षित है। यह एक ऐसी परंपरा है जहाँ कुछ भी नष्ट नहीं हुआ, बल्कि समय के साथ केवल रूपांतरित और समृद्ध हुआ है।

डॉ. राकेश मोहन नौटियाल

रॉक आर्ट: भीमबेटका - प्रागैतिहासिक मानव सभ्यता का जीवंत संग्रहालय

1. प्रस्तावना: अतीत की ओर एक खिड़की

भीमबेटका के शैल आश्रय (Bhimbetka Rock Shelters) भारतीय उपमहाद्वीप में **मानव जीवन के प्राचीनतम चिह्नों** को अपने भीतर समेटे हुए हैं। मध्य प्रदेश के रायसेन जिले में विंध्य पर्वतमाला की तलहटी में स्थित यह पुरातात्विक स्थल, हज़ारों वर्षों पूर्व के आदिमानव द्वारा बनाए गए अद्भुत शैल चित्रों (Rock Art) का एक विशाल संग्रह है। इन चित्रों के माध्यम से, भीमबेटका हमें न केवल प्रागैतिहासिक कला की गहराई से परिचित कराता है, बल्कि उस समय के मनुष्यों के दैनिक जीवन, उनकी आस्थाओं और उनके पर्यावरण के साथ उनके जटिल संबंधों को समझने का भी एक अनूठा अवसर प्रदान करता है।

भीमबेटका नाम का संबंध महाभारत के महाबली **भीम** से है, जिसका अर्थ है **'भीम के बैठने का स्थान'** ('भीमबैठका'), जो इस स्थल को एक पौराणिक आकर्षण भी प्रदान करता है। इन शैल आश्रयों की खोज वर्ष **1957-1958 में प्रसिद्ध पुरातत्वविद् डॉ. विष्णु श्रीधर वाकणकर** ने की थी। इसके पुरातात्विक और सांस्कृतिक महत्व को देखते हुए, **जुलाई 2003 में यूनेस्को (UNESCO)** द्वारा इसे **विश्व धरोहर स्थल (World Heritage Site)** घोषित किया गया।

2. भौगोलिक और पुरातात्विक परिदृश्य

भीमबेटका लगभग 10 किलोमीटर के क्षेत्र में फैला हुआ है, जिसमें 750 से अधिक शैलाश्रय हैं, जिनमें से 500 से अधिक में शैल चित्र पाए गए हैं। यह क्षेत्र बलुआ पत्थर (Sandstone) की विशाल चट्टानों से बना है, जिसने प्रागैतिहासिक मानवों को प्राकृतिक आवास और एक टिकाऊ कैनवास प्रदान किया।

शैलाश्रयों की संरचना

ये शैलाश्रय प्राकृतिक रूप से बड़े-बड़े पत्थरों के नीचे या गुफाओं के अंदर बने हुए हैं। इनमें से सबसे प्रसिद्ध है **'ऑडिटोरियम गुफा' (Auditorium Rock Shelter)**, जो अपने विशाल आकार और 'कैथेड्रल' जैसी संरचना के कारण जानी जाती है। इस गुफा के बीच में एक बड़ी चट्टान है, जिसे 'चीफ रॉक' (Chief Rock) कहा जाता है। शैलाश्रयों की दीवारों और छतों पर उत्कीर्ण प्यालेनुमा निशान (Cupules) भी मिले हैं, जो लगभग 1 लाख साल पुराने माने जाते हैं, और भीमबेटका को दुनिया के सबसे पुराने मानव निवास स्थानों में से एक सिद्ध करते हैं।

कालक्रम और सांस्कृतिक चरण

भीमबेटका के चित्रों की कलाकृतियाँ कई हज़ारों वर्षों की निरंतर मानव उपस्थिति और सांस्कृतिक विकास को दर्शाती हैं। इन्हें मुख्य रूप से सात कालखंडों में वर्गीकृत किया गया है:

1. **ऊपरी पुरापाषाण काल (Upper Paleolithic Period):** इस काल के चित्र कम और बड़े आकार के हैं, जिनमें मुख्यतः विशालकाय जानवरों जैसे गैंडा और बाइसन का चित्रण किया गया है। रंग के रूप में गहरे लाल और हरे रंग का उपयोग अधिक हुआ है।

2. **मध्यपाषाण काल (Mesolithic Period):** यह सबसे महत्वपूर्ण काल है। इस समय के चित्र सर्वाधिक संख्या में और छोटे आकार के हैं। चित्रों का विषय शिकार, युद्ध, सामुदायिक नृत्य और भोजन संग्रह जैसे दैनिक जीवन पर केंद्रित है।

3. **ताम्रपाषाण काल और ऐतिहासिक काल:** इस चरण के चित्रों में कृषि, पालतू जानवर, रथ और हथियार जैसी नई सामाजिक गतिविधियों और तकनीकों का चित्रण दिखाई देता है, जो शिकारी-संग्राहक जीवन से कृषि आधारित समाज की ओर संक्रमण को दर्शाता है।

3. शैल कला की विषय-वस्तु और शैली

भीमबेटका की रॉक कला उस समय के मानव की रचनात्मकता और अवलोकन क्षमता का अद्भुत प्रमाण है। चित्र मुख्य रूप से दो प्रमुख श्रेणियों में विभाजित किए जा सकते हैं: **पशु चित्र** और **मानव गतिविधियाँ**।

पशु जगत का चित्रण

आदिमानव ने अपने परिवेश के जानवरों को अत्यंत कुशलता से चित्रित किया है।

- **विशालकाय सूअर (Boar Rock):** 'जू रॉक' (Zoo Rock) नामक एक शैलाश्रय में सींग वाले जंगली सूअर का एक प्रसिद्ध और विशाल चित्र है, जो मनुष्यों की तुलना में बहुत बड़ा है।
- **अन्य जानवर:** हाथी, बाघ, शेर, हिरण, बंदर, नीलगाय और जंगली कुत्ते जैसे पशुओं का चित्रण उनकी शक्ति और गतिशीलता के साथ किया गया है। कुछ चित्रों में जानवरों के शरीर को ज्यामितीय आकृतियों और पैटर्न से सजाया गया है।

मानव जीवन के दृश्य

शैल चित्रों में मानव जीवन के विविध पहलू देखने को मिलते हैं:

- **शिकार और लड़ाई:** सबसे आम दृश्य हैं, जिनमें समूह में शिकार करते हुए, धनुष-बाण का उपयोग करते हुए और सामूहिक रूप से जानवरों को फंसाते हुए दिखाया गया है। बाद के चित्रों में घोड़ों और हाथियों पर सवार योद्धाओं को भी चित्रित किया गया है।
- **नृत्य और संगीत:** कई चित्र सामुदायिक नृत्यों को दर्शाते हैं, जो आदिमानव के मनोरंजन और सामाजिक सामंजस्य का महत्वपूर्ण हिस्सा थे।
- **दैनिक क्रियाएं:** बच्चों के जन्म, महिलाओं द्वारा भोजन तैयार करने, और शहद इकट्ठा करने जैसे साधारण दैनिक जीवन के दृश्य भी चित्रित हैं, जो उनके शांतिपूर्ण और सामूहिक जीवन को उजागर करते हैं।

प्रयुक्त रंग और तकनीक

इन चित्रों की सबसे बड़ी विशेषता **प्राकृतिक रंगों** की दीर्घायु है।

- **रंग स्रोत:** कलाकारों ने रंग बनाने के लिए स्थानीय खनिजों का उपयोग किया। **लाल रंग** (गेरू या हेमेटाइट) सबसे प्रमुख था, जबकि **सफेद रंग** (चूना पत्थर), **पीला**, **हरा** (कॉपर ऑक्साइड), और **काला** (मैंगनीज ऑक्साइड या चारकोल) रंग भी इस्तेमाल किए गए थे।
- **स्थायित्व:** खनिजों को पीसकर और संभवतः पशु की चर्बी या गोंद मिलाकर गाढ़ा घोल तैयार किया जाता था, जो चट्टानों के साथ रासायनिक रूप से प्रतिक्रिया कर उन्हें हज़ारों साल तक टिकाऊ बनाए रखता था।
- **ब्रश:** पौधों के रेशों या टहनियों को पीसकर बनाए गए ब्रश का उपयोग चित्र बनाने के लिए किया गया था।

4. भीमबेटका का सांस्कृतिक और तुलनात्मक महत्व

भीमबेटका केवल एक पुरातात्विक स्थल नहीं है; यह एक **जीवित सांस्कृतिक विरासत** है। इसकी कला हमें दुनिया के अन्य प्रागैतिहासिक रॉक आर्ट स्थलों, जैसे स्पेन की अल्तामीरा और फ्रांस की लास्को गुफाओं, के साथ तुलना करने का अवसर देती है, जिससे यह सिद्ध होता है कि दुनिया भर में प्राचीन मानवों में कलात्मक अभिव्यक्ति और प्रतीकात्मक सोच का विकास समानांतर रूप से हुआ था।

सांस्कृतिक निरंतरता

भीमबेटका के आसपास के 21 गांवों में रहने वाले आदिवासियों (विशेषकर गोंड और भील समुदायों) की वर्तमान जीवनशैली, लोक कथाएं और धार्मिक प्रथाएं कुछ हद तक शैल चित्रों में चित्रित दृश्यों से मेल खाती हैं। यह एक **अद्वितीय सांस्कृतिक निरंतरता** को दर्शाता है—एक अटूट बंधन जो प्रागैतिहासिक अतीत को वर्तमान से जोड़ता है।

प्रतीकात्मक और आध्यात्मिक अर्थ

कई चित्रों में साधारण ज्यामितीय आकृतियों और प्रतीकों का उपयोग किया गया है। पुरातत्वविदों का मानना है कि ये केवल कलात्मक अभिव्यक्ति नहीं थीं, बल्कि उनका कोई **धार्मिक या जादुई अर्थ** भी था। हो सकता है कि ये चित्र शिकार की सफलता सुनिश्चित करने, बुरी आत्माओं को दूर रखने, या अनुष्ठानों के भाग के रूप में बनाए गए हों। यह आदिमानव के विकसित **आध्यात्मिक जीवन** और **संज्ञानात्मक कौशल** को प्रमाणित करता है।

5. संरक्षण और निष्कर्ष

भीमबेटका भारतीय इतिहास का गौरव है। यद्यपि इसके शैल चित्र हज़ारों वर्षों से मौसम और जलवायु के प्रभावों को झेल चुके हैं, लेकिन अब इसे मानवजनित क्षरण और प्रदूषण जैसे खतरों का सामना करना पड़ रहा है। भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण (ASI) और यूनेस्को इसे संरक्षित रखने के लिए महत्वपूर्ण प्रयास कर रहे हैं।

निष्कर्ष:

भीमबेटका के रॉक शेल्टर और उनकी कलाकृति हमें उस समय के मानव मन की गहराई में झाँकने का दुर्लभ अवसर देती है जब मनुष्य और प्रकृति के बीच का संबंध अत्यंत घनिष्ठ था। ये चित्र सिर्फ़ अतीत की कहानी नहीं सुनाते, बल्कि मानव सभ्यता के विकास, कला के जन्म, और हमारे पूर्वजों के संघर्षपूर्ण, फिर भी जीवंत, जीवन की गाथा गाते हैं। भीमबेटका वास्तव में एक **प्रागैतिहासिक मानव सभ्यता का जीवंत संग्रहालय** है, जो आने वाली पीढ़ियों के लिए भी मानव इतिहास के इस अद्भुत अध्याय को संरक्षित रखने का आह्वान करता है। यह हमें याद दिलाता है कि कला और कहानी कहने की इच्छा मानव स्वभाव का एक अंतर्निहित हिस्सा रही है, जो समय की सीमाओं से परे है।

डॉ. राकेश मोहन नौटियाल

भारत में स्तूप वास्तुकला: एक शोध आलेख (साँची एवं अमरावती)

प्रस्तावना: भारतीय स्तूप वास्तुकला का ऐतिहासिक और प्रतीकात्मक परिप्रेक्ष्य

स्तूप भारतीय उपमहाद्वीप में बौद्ध धार्मिक वास्तुकला की सबसे विशिष्ट और प्राचीन संरचनाओं में से एक हैं। स्तूप शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत और पालि भाषा से हुई है, जिसका शाब्दिक अर्थ "राख का ढेर" या "टीला" है [1]। यह संरचना मूलतः एक समाधि स्थल के रूप में विकसित हुई, जिसका निर्माण मृतक की चिता के ऊपर या उसकी चुनी हुई अस्थियों को रखने के लिए किया जाता था [2]। बौद्ध धर्म में, विशेष रूप से गौतम बुद्ध के परिनिर्वाण के बाद, उनके अवशेषों को संरक्षित करने के लिए स्तूपों का निर्माण किया गया, जिससे वे पूजा और श्रद्धा के पवित्र केंद्र बन गए [1, 3]। बौद्ध ग्रंथों में स्तूपों को चैत्य भी कहा गया है, यद्यपि चैत्य मूलतः एक प्रार्थना कक्ष को संदर्भित करता था [3, 4, 5]।

मौर्योत्तर काल में स्तूप वास्तुकला में अभूतपूर्व विकास हुआ। सम्राट अशोक ने अपने विशाल साम्राज्य के विभिन्न हिस्सों में बौद्ध धर्म के प्रचार के लिए 84,000 स्तूपों का निर्माण करवाया [3, 4]। अशोक के शासनकाल के बाद, शुंग और सातवाहन जैसे शासकों के संरक्षण में इन स्तूपों को ईंट की साधारण संरचनाओं से कलात्मक और स्थापत्य चमत्कारों में परिवर्तित किया गया [6, 7]। इस चरण में, स्तूपों में परिक्रमा पथ, वेदिका (रेलिंग) और तोरण द्वार जैसे महत्वपूर्ण स्थापत्य घटकों को जोड़ा गया, जो उनके धार्मिक और कलात्मक महत्व को बढ़ाते थे [6, 7]। यह आलेख भारतीय स्तूप वास्तुकला के दो उत्कृष्ट उदाहरणों - सांची के महास्तूप और अमरावती के महाचैत्य - का गहन तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करता है। इसका उद्देश्य उनके ऐतिहासिक विकास, स्थापत्य घटकों, कलात्मक शैलियों, धार्मिक महत्व और उनके संरक्षण की भिन्न-भिन्न गाथाओं का विश्लेषण करना है।

भाग 1: साँची का महास्तूप - स्थायित्व, परंपरा और संरक्षण की मिसाल

2.1. ऐतिहासिक पृष्ठभूमि और विकास की समयरेखा

साँची का महान स्तूप भारतीय बौद्ध वास्तुकला का एक कालजयी उदाहरण है, जिसकी विकास यात्रा कई राजवंशों के शासनकाल से जुड़ी हुई है [7]। मूल स्तूप का निर्माण सम्राट अशोक ने तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व में एक साधारण ईंट की संरचना के रूप में करवाया था, जिसमें माना जाता है कि भगवान बुद्ध के

अवशेष रखे गए थे [6, 7, 8]। इस निर्माण की देखरेख अशोक की पत्नी देवी ने की थी, जिन्हें पास के व्यापारिक शहर विदिशा के समुदाय से भी संरक्षण प्राप्त हुआ [6]।

मौर्य साम्राज्य के पतन के बाद, शुंग काल (दूसरी शताब्दी ईसा पूर्व) के दौरान, स्तूप का महत्वपूर्ण विस्तार हुआ [7, 9]। मूल ईंट संरचना को बलुआ पत्थर की पट्टियों से ढका गया और इसका आकार लगभग दोगुना कर दिया गया [6, 10]। इसी दौरान, इसके चारों ओर एक परिक्रमा पथ (प्रदक्षिणा पथ) और एक पत्थर की वेदिका (रेलिंग) भी जोड़ी गई [6]। सातवाहन काल (पहली शताब्दी ईसा पूर्व) में, वास्तुकला का यह विकास अपने चरम पर पहुँच गया जब चार विस्तृत और नक्काशीदार तोरण द्वारों का निर्माण किया गया [6, 9]। इन तोरण द्वारों ने स्तूप को पूर्णता और एक विशिष्ट पहचान प्रदान की [11]। गुप्त काल में, स्तूप के भीतर बुद्ध की मानव प्रतिमाएं स्थापित की गईं, जो कलात्मक शैली में एक महत्वपूर्ण बदलाव को दर्शाती हैं [9, 11]।

2.2. स्थापत्य कला और संरचनात्मक घटक

साँची के महास्तूप की स्थापत्य संरचना प्रतीकात्मकता से परिपूर्ण है। इसका मुख्य अर्द्ध-गोलाकार गुंबद जिसे अंड कहा जाता है, इसका व्यास 36.5 मीटर है [8, 12]। यह गुंबद मेरू पर्वत का प्रतीक है [12]। गुंबद के शीर्ष पर एक चौकोर, रेलिंग वाली संरचना है, जिसे हरमिका कहते हैं, जो ब्रह्मांड के केंद्र का प्रतिनिधित्व करती है [5]। हरमिका के ऊपर एक छतरी जैसी संरचना (छत्रावली) है, जो बुद्ध के सम्मान और संरक्षण का प्रतीक है [5, 6, 11]।

स्तूप के आधार पर एक उठा हुआ गोलाकार मंच (मेधी) है, जिसके चारों ओर परिक्रमा पथ (प्रदक्षिणा पथ) है [5]। स्तूप के शीर्ष तक पहुँचने के लिए घुमावदार सीढ़ियाँ (सीढ़ियाँ) हैं, जिनका उपयोग भिक्षु परिक्रमा करने के लिए करते थे [5, 11]। यह स्तूप एक पत्थर की वेदिका से घिरा हुआ है जो पवित्र स्थान को धर्मनिरपेक्ष दुनिया से अलग करती है [12]। स्तूप की सबसे उल्लेखनीय विशेषता चार दिशाओं में स्थित चार तोरण द्वार हैं। इन द्वारों पर जातक कथाओं और बुद्ध के जीवन के दृश्यों का विस्तृत और सघन चित्रण है [9, 11]।

2.3. कलात्मक शैली और मूर्तिकला का विश्लेषण

साँची की मूर्तिकला प्रारंभिक बौद्ध कला परंपरा को दर्शाती है, जहाँ बुद्ध को सीधे मानव रूप में चित्रित नहीं किया गया है [13]। इसके बजाय, उन्हें प्रतीकों के माध्यम से दर्शाया गया है [1, 14]। इन प्रतीकों में धर्मचक्र (पहिया), बोधिवृक्ष (ज्ञान का वृक्ष), खाली सिंहासन और पदचिह्न (पैर के निशान) शामिल हैं [13, 14]। तोरण द्वारों पर उत्कीर्णन जातक कथाओं और गौतम बुद्ध के जीवन की घटनाओं जैसे कि उनकी

माता माया का स्वप्न, गृह त्याग और ज्ञान प्राप्ति के दृश्यों को बखूबी दर्शाते हैं [7, 9]। इस कला शैली की सादगी और प्रतीकात्मकता, प्रारंभिक बौद्ध धर्म के मूल सिद्धांतों को दर्शाती है, जहाँ व्यक्ति-पूजा के बजाय शिक्षाओं और सिद्धांतों पर अधिक बल दिया गया था।

2.4. संरक्षण और वर्तमान स्थिति

साँची के महास्तूप की संरक्षण गाथा भारतीय पुरातत्व के इतिहास में एक महत्वपूर्ण अध्याय है। यह स्थल कई शताब्दियों तक परित्यक्त और जीर्ण-शीर्ण अवस्था में रहा [7]। वर्ष 1818 में ब्रिटिश अधिकारी हेनरी टेलर ने इसकी खोज की, और 1851 में अलेक्जेंडर कनिंघम ने इसका पहला औपचारिक सर्वेक्षण और उत्खनन का नेतृत्व किया [6, 15]। इसके बाद, 1912 से 1919 के बीच इसे सावधानीपूर्वक मरम्मत कर पुनर्जीवित किया गया [15]। अमरावती स्तूप के विपरीत, साँची की सापेक्षिक अलगाव और बाद में सरकार द्वारा प्रदान किया गया संरक्षण ही इसके स्थायित्व का प्रमुख कारण रहा [16]। इस स्थल को 1989 में यूनेस्को विश्व धरोहर स्थल के रूप में मान्यता दी गई [7, 8, 15, 17]।

भाग 2: अमरावती का महाचैत्य - कलात्मक क्रांति और विध्वंस का दुखद अध्याय

3.1. ऐतिहासिक पृष्ठभूमि और खोज का दुखद इतिहास

आंध्र प्रदेश के गुंटूर जिले में कृष्णा नदी के तट पर स्थित अमरावती का महाचैत्य, जिसे महास्तूप भी कहा जाता है, भारतीय स्तूप वास्तुकला का एक दूसरा महत्वपूर्ण उदाहरण है [18, 19, 20]। इस क्षेत्र का प्राचीन नाम धान्यकटक था और यह सातवाहन शासकों की राजधानी था [18, 21]। ऐसा माना जाता है कि इस स्थान पर भी सम्राट अशोक ने एक स्तूप की नींव रखी थी [22]। हालांकि, यह सातवाहन शासकों के संरक्षण में ही एक साधारण चूना पत्थर संरचना से एक भव्य वास्तुशिल्प स्मारक में परिवर्तित हुआ [22, 23]।

अमरावती स्तूप की खोज 1797 में कर्नल मैकेंजी द्वारा की गई थी, और इसका उत्खनन कार्य 1840 में इलियट ने किया था [18, 21]। अमरावती स्तूप का भाग्य साँची से बिल्कुल विपरीत रहा। यह अपने मूल स्थान पर पूरी तरह से नष्ट हो चुका है [18, 21]। इसके विध्वंस के प्राथमिक कारणों में बौद्ध धर्म के प्रति संरक्षण का अभाव और सातवीं शताब्दी ईस्वी पूर्व तक शैव मत का उदय था [16]। इसके अतिरिक्त, 19वीं शताब्दी में प्राचीन स्मारकों के संरक्षण के प्रति सरकारी उदासीनता के कारण स्थानीय लोगों और ब्रिटिश

अधिकारियों ने निर्माण सामग्री के लिए स्तूप के पत्थरों का उपयोग किया, जिससे और अधिक गिरावट आई [16]।

3.2. स्थापत्य कला और संरचनात्मक घटक

अमरावती के महाचैत्य को "महाचैत्य" के नाम से भी जाना जाता था, जो यह दर्शाता है कि यह सिर्फ एक स्तूप नहीं बल्कि एक विशाल प्रार्थना स्थल या सामुदायिक केंद्र भी था [10, 22, 24]। यह स्तूप ईंट और चूना पत्थर से बना था [22, 23]। उपलब्ध साक्ष्यों के आधार पर, यह साँची स्तूप की तुलना में अधिक लंबा था और इसमें चार मुख्य दिशाओं में फैले ऊंचे प्लेटफार्म (आयक) थे [19, 21, 22]। इन प्लेटफार्मों पर पाँच आयक स्तंभ लगाये जाते थे जो संपूर्ण संरचना को सुदृढ़ आधार प्रदान करते थे [21]। इस स्तूप की वेदिका पर भी विस्तृत नक्काशी थी, लेकिन इसके तोरण द्वार समय के साथ नष्ट हो गए हैं [13, 18]।

3.3. अमरावती कला शैली का विश्लेषण

अमरावती कला शैली अपनी मूर्तिकला और सामग्री के लिए प्रसिद्ध है [13, 25]। इस शैली में मूर्तियों को बनाने के लिए सफेद संगमरमर (चूना पत्थर) का उपयोग किया गया था [13, 18, 25]। इसकी मूर्तियां अत्यधिक अलंकृत (highly decorated), गतिशील और यथार्थवादी थीं, जिनमें जीवन और प्रवाह की भावना स्पष्ट रूप से दिखाई देती थी [25, 26]। इस कला में मूर्तियों को त्रिभंग आसन (तीन झुकावों के साथ शरीर) में चित्रित किया गया है [25]।

अमरावती शैली, मथुरा और गांधार शैलियों के समानांतर, बुद्ध को प्रतीकात्मक के बजाय सीधे मानव रूप में चित्रित करने वाली प्रारंभिक शैलियों में से एक थी [13, 14, 22, 25]। यहाँ के कुछ पैनलों में बुद्ध का प्रतीकात्मक और मानव रूप दोनों एक साथ दिखाए गए हैं, जो कलात्मक विकास के एक महत्वपूर्ण संक्रमण काल को दर्शाते हैं [26]। इस शैली की प्रमुख विशेषता कथात्मक राहत (narrative art) थी, जिसमें बुद्ध के जीवन की पूरी कहानी और जातक कथाओं को जटिलता और गतिशीलता के साथ एक ही पटल पर दर्शाया गया है [25, 26]। अमरावती कला ने दक्षिण भारत के साथ-साथ श्रीलंका और दक्षिण पूर्व एशिया की कला पर गहरा प्रभाव डाला [13, 27]। अमरावती बौद्ध दर्शन का भी एक प्रमुख केंद्र बन गया, जहाँ आचार्य नागार्जुन जैसे दार्शनिकों ने शून्यता और मध्य मार्ग की अवधारणा पर ध्यान केंद्रित करते हुए मध्यमिका दर्शन विकसित किया [16]।

भाग 3: तुलनात्मक विश्लेषण और निष्कर्ष

4.1. स्थापत्य और कलात्मक तुलना

साँची और अमरावती के स्तूप, भारतीय कला के दो भिन्न, फिर भी पूरक, अध्यायों का प्रतिनिधित्व करते हैं। जहाँ साँची की वास्तुकला में सादगी और प्रतीकात्मकता हावी है, वहीं अमरावती में कलात्मकता, यथार्थवाद और बुद्ध के मानवीय चित्रण की शुरुआत दिखाई देती है [13, 14, 22, 24]। यह अंतर केवल भौगोलिक नहीं है, बल्कि कलात्मक विकास के दो अलग-अलग चरणों का प्रतिनिधित्व करता है [24]। अमरावती कला अपनी समकालीन मथुरा और गांधार शैलियों की तरह ही विकसित और प्रगतिशील थी, जिसमें जटिलता और अति-सजावट (highly decorated) प्रमुख थी [24]।

दोनों स्तूपों में समान प्रारंभिक संरक्षण था (अशोक और सातवाहन), लेकिन उनके बाद के इतिहास ने उनके भाग्य को निर्धारित किया। साँची की सापेक्षिक अलगाव ने उसे विनाश से बचाया, जबकि अमरावती का शहरी और धार्मिक केंद्र के रूप में महत्व ही उसके विध्वंस का कारण बन गया [16, 21]। जहाँ साँची की वास्तुकला आज भी अपनी मूल भव्यता को दर्शाती है, वहीं अमरावती की भव्यता के अवशेष केवल संग्रहालयों में ही देखे जा सकते हैं [18, 21, 23]।

साँची और अमरावती स्तूपों का तुलनात्मक विश्लेषण

तुलनात्मक पहलू	साँची स्तूप	अमरावती स्तूप (महाचैत्य)
स्थान	मध्य प्रदेश, विदिशा के पास [2]	आंध्र प्रदेश, कृष्णा नदी के तट पर [18, 19, 20]
मुख्य संरक्षक	सम्राट अशोक (मौर्य), शुंग और सातवाहन [6, 7, 9]	सम्राट अशोक (मौर्य), सातवाहन शासक [22, 28]
निर्माण सामग्री	मूल रूप से ईंट, बाद में पत्थर का आवरण [8, 9]	मूल रूप से चूना पत्थर, बाद में सफेद संगमरमर [13, 18, 23]
वास्तुकला की स्थिति	काफी हद तक संरक्षित [8, 15]	मूल स्थान पर खंडहर, अवशेष संग्रहालयों में [18, 21, 23]

प्रमुख कला शैली	प्रतीकात्मक (Aniconic), रैखिक, कम गतिशील [13, 14]	कथात्मक राहत, गतिशील, यथार्थवादी [25, 26]
बुद्ध का चित्रण	तोरण द्वारों पर प्रतीकात्मक (पहिया, वृक्ष), बाद में गुप्त काल में मानव मूर्तियाँ जोड़ी गईं [11, 13]	आरंभिक काल में प्रतीकात्मक, बाद में मानव रूप में चित्रण [13, 22, 25]
विशिष्ट स्थापत्य घटक	चार नक्काशीदार तोरण द्वार [9, 11]	ऊँचे प्लेटफार्म (आयक) और गतिशील मूर्तिकला [21, 22, 25]
धार्मिक महत्व	बौद्ध धर्म के प्रसार का केंद्र, तीर्थस्थल [8, 12]	बौद्ध दार्शनिक केंद्र (नागार्जुन), कला का केंद्र [16, 27]
यूनेस्को दर्जा	1989 से विश्व धरोहर स्थल [7, 15, 17]	विश्व धरोहर सूची में शामिल नहीं [17, 29]

निष्कर्ष: भारतीय विरासत में अद्वितीय योगदान

साँची और अमरावती के स्तूप, भारतीय बौद्ध कला और वास्तुकला के इतिहास में दो भिन्न, फिर भी पूरक, अध्यायों का प्रतिनिधित्व करते हैं। साँची, अपनी सादगी, प्रतीकात्मकता और उत्कृष्ट संरक्षण के माध्यम से, प्रारंभिक बौद्ध धर्म के मूल्यों और कलात्मक परंपराओं का एक स्थायी प्रमाण है। यह हमें सिखाता है कि किस प्रकार समय के साथ वास्तुकला और धर्म के प्रतीक विकसित होते हैं। अमरावती, अपनी कलात्मक भव्यता, गतिशीलता और बुद्ध के मानवीय चित्रण की शुरुआत के साथ, बौद्ध कला के एक क्रांतिकारी और विकसित चरण का प्रतिनिधित्व करता है। यह अपनी समकालीन शैलियों से अलग एक विशिष्ट, स्वदेशी शैली का विकास था [16]। यह दर्शाता है कि भारतीय कला अपनी यात्रा में कितनी प्रगतिशील और प्रयोगशील थी।

दोनों स्थल एक साथ मिलकर भारतीय उपमहाद्वीप में बौद्ध धर्म और कला के क्रमिक विकास की एक समृद्ध कहानी प्रस्तुत करते हैं [24]। जहाँ एक ओर साँची का स्तूप अपनी भौतिक उपस्थिति के माध्यम से हमें प्राचीनता का अनुभव कराता है, वहीं अमरावती के अवशेष और उसकी कलात्मक विरासत हमें एक महान परंपरा के खो जाने के दुखद अध्याय की याद दिलाती है, लेकिन साथ ही उसकी कलात्मक उत्कृष्टता

की गवाही भी देती है। ये दोनों स्थल भारत की कलात्मक, धार्मिक और दार्शनिक विरासत की गहराई और विविधता के अमूल्य प्रतीक हैं।

डॉ. राकेश मोहन नौटियाल

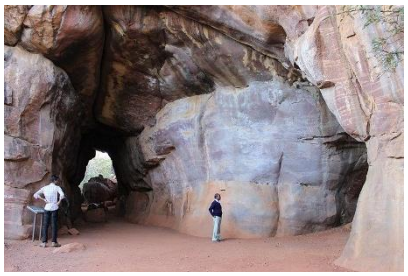
भारतीय कला का विकास

प्रागैतिहासिक शैलचित्रों से लेकर बौद्ध एवं ब्राह्मण मूर्तिकला तक

यह अध्ययन सामग्री स्नातक एवं स्नातकोत्तर स्तर के विद्यार्थियों के लिए तैयार की गई है। इसमें भारतीय कला की छह प्रमुख परंपराओं का स्वतंत्र रूप से ऐतिहासिक, सामाजिक, धार्मिक और कलात्मक विश्लेषण किया गया है। प्रत्येक विषय को लगभग पाँच हस्तलिखित पृष्ठों के अनुरूप विस्तार दिया गया है।

प्रथम इकाई : शैलचित्र कला — भीमबेटका

Rock Art of Bhimbetka | प्रागैतिहासिक भारतीय कला







1. प्रस्तावना

भारतीय कला का इतिहास अत्यंत प्राचीन है। इसकी शुरुआत उस समय से मानी जा सकती है जब मानव ने प्राकृतिक परिवेश में अपनी भावनाओं, अनुभवों और दैनिक जीवन की घटनाओं को चित्रों के माध्यम से व्यक्त करना आरंभ किया। लेखन कला के विकास से पहले मानव अपने विचारों और अनुभवों को चित्रों तथा संकेतों के माध्यम से व्यक्त करता था। इसी प्रारंभिक कलात्मक अभिव्यक्ति को शैलचित्र कला अथवा रॉक आर्ट कहा जाता है।

शैलचित्र कला भारतीय कला के इतिहास का सबसे प्राचीन और महत्त्वपूर्ण स्रोत है। इसके माध्यम से प्रागैतिहासिक मानव के सामाजिक जीवन, आर्थिक गतिविधियों, धार्मिक विश्वासों, शिकार की पद्धतियों, पशु-पक्षियों, पर्यावरण और सामूहिक जीवन की जानकारी प्राप्त होती है।

मध्य प्रदेश स्थित भीमबेटका के शैलाश्रय भारतीय प्रागैतिहासिक कला के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण केंद्रों में से एक हैं। यहाँ प्राप्त चित्र मानव की कलात्मक चेतना और प्रकृति के साथ उसके गहरे संबंधों को प्रदर्शित करते हैं।

2. शैलचित्र कला का अर्थ एवं स्वरूप

शैलचित्र कला से आशय चट्टानों, गुफाओं की दीवारों तथा प्राकृतिक शैलाश्रयों पर बनाए गए चित्रों और आकृतियों से है। अंग्रेजी में इसे Rock Art कहा जाता है। प्रागैतिहासिक मानव ने प्राकृतिक रंगों तथा सरल उपकरणों की सहायता से इन चित्रों का निर्माण किया।

शैलचित्रों को सामान्यतः दो व्यापक रूपों में समझा जाता है—

1. शैलचित्र (Rock Paintings): चट्टानों की सतह पर रंगों से बनाए गए चित्र।
2. शैल उत्कीर्णन (Rock Engravings): चट्टानों की सतह को खुरचकर, काटकर या उकेरकर बनाई गई आकृतियाँ।

इन चित्रों का उद्देश्य केवल मनोरंजन नहीं था। इनके माध्यम से मानव अपने अनुभवों को व्यक्त करता था। कुछ चित्रों का संबंध शिकार, सामूहिक अनुष्ठानों और धार्मिक विश्वासों से भी रहा होगा। हालांकि प्रत्येक चित्र के धार्मिक अथवा जादुई अर्थ को निश्चित रूप से प्रमाणित नहीं किया जा सकता।

3. भीमबेटका का भौगोलिक परिचय

भीमबेटका मध्य प्रदेश के रायसेन जिले में विंध्य पर्वतमाला के निकट स्थित है। यह भोपाल से लगभग 45 किलोमीटर दक्षिण में स्थित शैलाश्रयों का विस्तृत क्षेत्र है। यहाँ प्राकृतिक रूप से निर्मित विशाल चट्टानें, गुफाएँ और शैलाश्रय पाए जाते हैं।

यह क्षेत्र अपनी विशिष्ट भौगोलिक संरचना के कारण प्रागैतिहासिक मानव के निवास के लिए उपयुक्त था। यहाँ जलस्रोत, वनस्पति, वन्य जीव और प्राकृतिक आश्रय उपलब्ध थे। इस कारण मानव समुदाय लंबे समय तक इस क्षेत्र में निवास करते रहे।

भीमबेटका में लगभग 700 शैलाश्रय हैं। इनमें अनेक शैलाश्रयों में चित्रकला के प्रमाण प्राप्त हुए हैं। यहाँ विभिन्न कालों की सांस्कृतिक गतिविधियों के अवशेष मिलते हैं, जो मानव जीवन की दीर्घकालीन निरंतरता को प्रदर्शित करते हैं।

4. भीमबेटका की खोज एवं ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

भीमबेटका के शैलाश्रयों की पहचान भारतीय पुरातत्त्वविद् डॉ. विष्णु श्रीधर वाकणकर ने 1957–58 में की थी। उन्होंने इस क्षेत्र की चट्टानों और गुफाओं में प्रागैतिहासिक मानव की कलात्मक गतिविधियों के प्रमाण पहचाने।

इसके बाद भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण तथा अन्य शोधकर्ताओं ने यहाँ व्यापक अध्ययन और उत्खनन कार्य किए। इन अध्ययनों से ज्ञात हुआ कि भीमबेटका में मानव गतिविधियों के प्रमाण अत्यंत प्राचीन हैं तथा यहाँ विभिन्न प्रागैतिहासिक और ऐतिहासिक कालों की सांस्कृतिक परतें मौजूद हैं।

वर्ष 2003 में यूनेस्को ने भीमबेटका के शैलाश्रयों को विश्व धरोहर स्थल घोषित किया। यह मान्यता इस क्षेत्र के वैश्विक ऐतिहासिक और सांस्कृतिक महत्त्व को दर्शाती है।

5. भीमबेटका के चित्रों का काल निर्धारण

भीमबेटका के शैलचित्र किसी एक काल में निर्मित नहीं हुए। यहाँ विभिन्न कालों में चित्र बनाए गए। इन चित्रों में प्रागैतिहासिक काल से लेकर ऐतिहासिक काल तक की कलात्मक परंपराओं का विकास दिखाई देता है।

इन्हें व्यापक रूप से निम्नलिखित कालखंडों से जोड़कर समझा जा सकता है—

(क) पुरापाषाण काल: इस काल के मानव का जीवन मुख्यतः शिकार और खाद्य संग्रह पर आधारित था। शैलाश्रयों में मानव तथा पशुओं की आकृतियों के आरंभिक रूप मिलते हैं।

(ख) मध्यपाषाण काल: इस काल में मानव ने छोटे पत्थर के उपकरणों का प्रयोग किया। चित्रों में सामूहिक शिकार, नृत्य, मानव समूहों तथा पशुओं का अधिक स्पष्ट चित्रण मिलता है।

(ग) नवपाषाण एवं ताम्रपाषाण काल: इस काल में कृषि, पशुपालन और स्थायी जीवन की प्रवृत्तियों का विकास हुआ। चित्रों में सामाजिक गतिविधियों तथा जीवनशैली के अधिक विविध रूप दिखाई देते हैं।

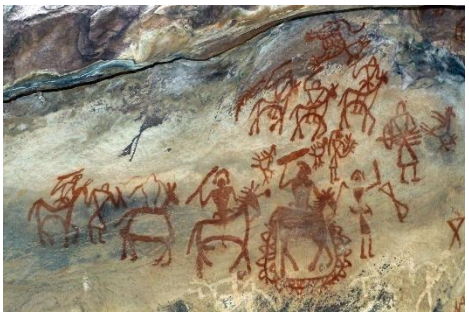
(घ) ऐतिहासिक काल: कुछ चित्रों में घुड़सवार, हथियार, युद्ध और अपेक्षाकृत विकसित सामाजिक जीवन के दृश्य मिलते हैं।

इन कालखंडों का निर्धारण चित्रों की शैली, रंग, विषय-वस्तु और पुरातात्त्विक साक्ष्यों के तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर किया जाता है।

6. भीमबेटका के चित्रों की विषय-वस्तु

भीमबेटका के चित्रों की सबसे उल्लेखनीय विशेषता उनकी विषय-वस्तु की विविधता है। इनमें मानव जीवन के अनेक पक्षों को चित्रित किया गया है।

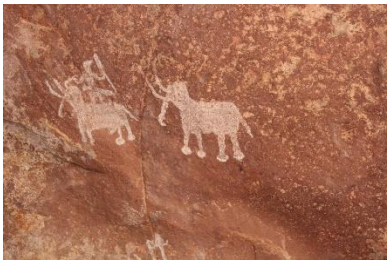
(क) शिकार के दृश्य



शिकार प्रागैतिहासिक मानव की प्रमुख आर्थिक गतिविधि थी। भीमबेटका के अनेक चित्रों में मनुष्य को धनुष-बाण, भाले और अन्य उपकरणों के साथ पशुओं का शिकार करते हुए दिखाया गया है।

इन चित्रों से तत्कालीन मानव की आजीविका, शिकार की तकनीक और सामूहिक सहयोग की जानकारी मिलती है। शिकार के दृश्यों में समूहबद्ध मानव आकृतियाँ सामाजिक संगठन की प्रारंभिक स्थिति को भी दर्शाती हैं।

(ख) पशु-पक्षियों का चित्रण



भीमबेटका के शैलचित्रों में हाथी, हिरण, बाघ, जंगली सूअर, बाइसन, घोड़े तथा अन्य पशुओं का चित्रण मिलता है। पशुओं की आकृतियों में उनके शरीर, गति और प्राकृतिक स्वरूप को दर्शाने का प्रयास किया गया है।

इन चित्रों से तत्कालीन पर्यावरण और जैव विविधता के विषय में जानकारी प्राप्त होती है। यह भी स्पष्ट होता है कि प्रागैतिहासिक मानव अपने आसपास के प्राकृतिक संसार का सूक्ष्म निरीक्षण करता था।

(ग) नृत्य एवं संगीत

भीमबेटका के कुछ चित्रों में मानव समूहों को नृत्य करते हुए दिखाया गया है। स्त्री और पुरुष की आकृतियाँ सामूहिक रूप से नृत्य करती दिखाई देती हैं। कुछ चित्रों में संगीत और उत्सव से संबंधित गतिविधियों के संकेत भी मिलते हैं।

ये दृश्य बताते हैं कि मानव जीवन केवल भोजन और सुरक्षा तक सीमित नहीं था, बल्कि उसमें मनोरंजन, सामूहिक उत्सव और सांस्कृतिक अभिव्यक्ति भी शामिल थी।

(घ) युद्ध एवं संघर्ष

कुछ चित्रों में मानव समूहों को हथियारों के साथ संघर्ष करते हुए दिखाया गया है। इनमें धनुष-बाण, भाले और अन्य हथियार दिखाई देते हैं। ये चित्र मानव समूहों के बीच संघर्ष और सुरक्षा की आवश्यकताओं का संकेत देते हैं।

(ङ) सामाजिक जीवन

डॉ. रक्षा मोहन चौरियाल

भीमबेटका के चित्रों में सामूहिक शिकार, नृत्य, पशुपालन तथा अन्य दैनिक गतिविधियों का चित्रण मिलता है। इससे तत्कालीन मानव के सामूहिक जीवन, सामाजिक सहयोग और सामुदायिक संबंधों की जानकारी प्राप्त होती है।

7. रंग एवं चित्र निर्माण की तकनीक

भीमबेटका के चित्रों में मुख्यतः लाल, सफेद, पीले और कुछ अन्य प्राकृतिक रंगों का प्रयोग हुआ है। इन रंगों को प्राकृतिक खनिजों और पदार्थों से तैयार किया जाता था।

- लाल रंग के लिए गेरू और लौह ऑक्साइड का प्रयोग।
- सफेद रंग के लिए चूने अथवा अन्य सफेद खनिज पदार्थों का उपयोग।
- पीले रंग के लिए प्राकृतिक खनिज रंगों का प्रयोग।
- चित्र बनाने के लिए उँगलियों, लकड़ी की टहनियों और अन्य सरल उपकरणों का उपयोग।

चित्रों में रेखांकन सरल होते हुए भी प्रभावशाली है। मानव और पशु आकृतियों को सीमित रेखाओं में प्रस्तुत किया गया है। कई चित्रों में गति और क्रियाशीलता को प्रदर्शित करने का प्रयास दिखाई देता है।

8. भीमबेटका की कला का सामाजिक एवं आर्थिक महत्त्व

भीमबेटका के शैलचित्र केवल कलात्मक सामग्री नहीं हैं, बल्कि प्रागैतिहासिक इतिहास के महत्त्वपूर्ण स्रोत भी हैं।

आर्थिक जीवन: शिकार, पशुपालन और खाद्य संग्रह की गतिविधियों का ज्ञान मिलता है।

सामाजिक जीवन: सामूहिक शिकार और नृत्य से समूह जीवन और सामाजिक सहयोग का पता चलता है।

धार्मिक विश्वास: कुछ चित्रों का संबंध अनुष्ठानिक गतिविधियों और प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति से हो सकता है। हालांकि इनके अर्थों के बारे में सावधानीपूर्वक व्याख्या आवश्यक है।

पर्यावरणीय इतिहास: पशु-पक्षियों और प्राकृतिक परिवेश के चित्र तत्कालीन पर्यावरण की जानकारी देते हैं।

सांस्कृतिक इतिहास: नृत्य, उत्सव और सामूहिक गतिविधियों से प्राचीन सांस्कृतिक अभिव्यक्ति का पता चलता है।

9. भारतीय कला के विकास में भीमबेटका का योगदान

भीमबेटका भारतीय चित्रकला की प्रारंभिक परंपरा का महत्त्वपूर्ण उदाहरण है। यहाँ कला का संबंध मानव के प्रत्यक्ष अनुभवों और प्राकृतिक जीवन से दिखाई देता है।

डॉ. राकेश मोहन जोशियाल

बाद के काल में भारतीय चित्रकला में धार्मिक कथाओं, राजदरबारों, प्रकृति और सामाजिक जीवन का चित्रण विकसित हुआ। भीमबेटका की कला इस दीर्घ कलात्मक परंपरा की प्रारंभिक अभिव्यक्ति को समझने में सहायता करती है।

इसका सबसे बड़ा योगदान यह है कि यह प्रमाणित करता है कि भारतीय उपमहाद्वीप में मानव ने अत्यंत प्राचीन काल से ही दृश्य कला का विकास कर लिया था।

10. संरक्षण की चुनौतियाँ

भीमबेटका के शैलचित्र प्राकृतिक और मानवीय दोनों प्रकार के खतरों का सामना करते हैं। तापमान में परिवर्तन, नमी, जल का रिसाव, जैविक वृद्धि, धूल तथा मानवीय हस्तक्षेप चित्रों को नुकसान पहुँचा सकते हैं।

इसके संरक्षण के लिए निम्न उपाय आवश्यक हैं—

1. शैलाश्रयों में अनियंत्रित प्रवेश को रोकना।
2. चित्रों को छूने और उन पर लिखने की गतिविधियों पर नियंत्रण।
3. वैज्ञानिक विधियों से चित्रों का संरक्षण।
4. डिजिटल फोटोग्राफी और दस्तावेजीकरण।
5. स्थानीय समुदायों में विरासत संरक्षण के प्रति जागरूकता।
6. नियमित पुरातात्त्विक निरीक्षण।

11. निष्कर्ष

भीमबेटका के शैलचित्र भारतीय कला के इतिहास की आधारशिला हैं। इनमें प्रागैतिहासिक मानव की जीवनशैली, आर्थिक गतिविधियाँ, सामाजिक संगठन, धार्मिक विश्वास और प्रकृति के प्रति संवेदनशीलता का चित्रण मिलता है।

ये चित्र इस बात का प्रमाण हैं कि कला मानव जीवन का अभिन्न अंग रही है। भीमबेटका की शैलचित्र परंपरा भारतीय कला के विकास को समझने के साथ-साथ विश्व मानव सभ्यता के सांस्कृतिक इतिहास को समझने में भी महत्त्वपूर्ण योगदान देती है।

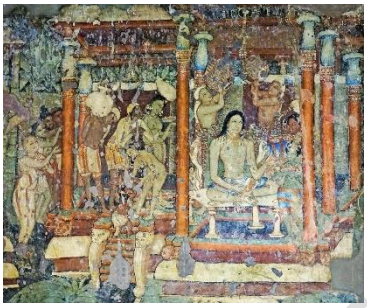
डॉ. राकेश मोहन नौटियाल

गुफा चित्रकला — अजंता

Ajanta Cave Paintings | प्राचीन भारतीय भित्तिचित्र कला







1. प्रस्तावना

भारतीय चित्रकला के इतिहास में अजंता की गुफाओं का स्थान अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। अजंता के भित्तिचित्र प्राचीन भारतीय कला की उत्कृष्ट उपलब्धियों में गिने जाते हैं। इन चित्रों में धार्मिक आस्था, मानवीय संवेदना, सामाजिक जीवन, प्रकृति, संगीत, नृत्य और तत्कालीन राजनीतिक-सांस्कृतिक परिस्थितियों का सुंदर चित्रण मिलता है।

अजंता की चित्रकला विशेष रूप से बौद्ध धर्म से संबंधित है। यहाँ बुद्ध के जीवन, जातक कथाओं और बोधिसत्त्वों के चित्रों के माध्यम से करुणा, त्याग, दान, मैत्री और अहिंसा जैसे आदर्शों को अभिव्यक्त किया गया है।

अजंता की कला यह भी दर्शाती है कि प्राचीन भारत में चित्रकला केवल धार्मिक अभिव्यक्ति का माध्यम नहीं थी, बल्कि समाज के विभिन्न वर्गों और जीवनशैलियों का दस्तावेज भी थी।

2. अजंता की भौगोलिक स्थिति

अजंता की गुफाएँ महाराष्ट्र राज्य में स्थित हैं। ये वाघोरा नदी की घाटी में घोड़े की नाल के आकार की पहाड़ी पर निर्मित हैं। गुफाएँ चट्टानों को काटकर बनाई गई हैं।

इन गुफाओं का प्राकृतिक परिवेश अत्यंत सुंदर है। पहाड़ी, नदी और वन क्षेत्र ने यहाँ धार्मिक साधना तथा मठवासी जीवन के लिए अनुकूल वातावरण प्रदान किया।

अजंता में कुल 30 गुफाएँ मानी जाती हैं। इनमें चैत्यगृह और विहार दोनों प्रकार की संरचनाएँ शामिल हैं।

- चैत्यगृह: पूजा, प्रार्थना और सामूहिक धार्मिक उपासना के लिए।
- विहार: बौद्ध भिक्षुओं के निवास और अध्ययन के लिए।

3. अजंता की खोज एवं ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

अजंता की गुफाएँ लंबे समय तक स्थानीय क्षेत्र में जानी जाती थीं, लेकिन आधुनिक इतिहास में इनकी पुनः पहचान 1819 में एक ब्रिटिश अधिकारी जॉन स्मिथ द्वारा की गई। वह शिकार के दौरान इस क्षेत्र में पहुँचा था।

इसके बाद विद्वानों, पुरातत्त्वविदों और कलाकारों ने इन गुफाओं का अध्ययन किया। अजंता की चित्रकला ने विश्वभर के कला इतिहासकारों का ध्यान आकर्षित किया।

अजंता का विकास मुख्यतः दो प्रमुख चरणों में हुआ—

(क) प्रारंभिक चरण

यह चरण लगभग दूसरी शताब्दी ईसा पूर्व से पहली शताब्दी ईस्वी तक माना जाता है। इस समय सातवाहन शासकों के काल में बौद्ध धर्म और मठवासी संस्थाओं को संरक्षण मिला।

इस चरण में गुफा संख्या 9 और 10 जैसे चैत्यगृह प्रमुख हैं। प्रारंभिक बौद्ध कला में बुद्ध को प्रत्यक्ष मानव आकृति के स्थान पर प्रतीकों के माध्यम से व्यक्त करने की परंपरा दिखाई देती है।

(ख) उत्तरवर्ती चरण

यह चरण मुख्यतः पाँचवीं और छठी शताब्दी ईस्वी से संबंधित है। इस समय वाकाटक शासकों और उनके सामंतों तथा दानदाताओं के संरक्षण में अजंता की गुफाओं का व्यापक विकास हुआ।

वाकाटक शासक हरिषेण का शासन इस कलात्मक विकास के संदर्भ में विशेष महत्त्व रखता है। इस चरण में गुफा संख्या 1, 2, 16 और 17 के चित्र विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

4. अजंता की गुफाओं का स्थापत्य

अजंता की गुफाएँ चट्टानों को काटकर बनाई गई हैं। इनमें बौद्ध धर्म के स्थापत्य की दो प्रमुख शैलियाँ दिखाई देती हैं।

चैत्यगृह की विशेषताएँ:

- लंबा प्रार्थना कक्ष।
- स्तंभों की पंक्तियाँ।
- अर्धवृत्ताकार अथवा अप्सिदल योजना।

- पीछे की ओर स्तूप।
- छत पर लकड़ी की संरचनाओं की नकल करते हुए शिल्प।

विहार की विशेषताएँ:

- केंद्रीय सभा कक्ष।
- चारों ओर भिक्षुओं के निवास कक्ष।
- पीछे की ओर बुद्ध की प्रतिमा वाला गर्भगृह।
- स्तंभों और भितिचित्रों से सुसज्जित आंतरिक भाग।

अजंता का स्थापत्य बौद्ध धर्म में साधना, शिक्षा और सामूहिक धार्मिक जीवन के विकास को दर्शाता है।

5. अजंता चित्रकला की विषय-वस्तु

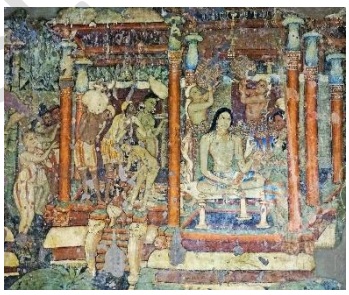
(क) बुद्ध के जीवन की घटनाएँ



अजंता के चित्रों में बुद्ध के जीवन की अनेक घटनाओं का चित्रण मिलता है। इनमें जन्म, महाभिनिष्क्रमण, ज्ञान प्राप्ति, धर्मचक्र प्रवर्तन और महापरिनिर्वाण जैसे प्रसंगों से संबंधित कलात्मक परंपराएँ शामिल हैं।

इन चित्रों का उद्देश्य केवल घटनाओं का वर्णन करना नहीं था, बल्कि बौद्ध धर्म के नैतिक और आध्यात्मिक आदर्शों को जनसामान्य तक पहुँचाना भी था।

(ग) जातक कथाएँ



जातक कथाएँ बुद्ध के पूर्व जन्मों से संबंधित कथाएँ हैं। इनमें बुद्ध को विभिन्न रूपों में जन्म लेकर दान, त्याग, करुणा और नैतिकता का पालन करते हुए दिखाया गया है।

अजंता में जातक कथाओं के अनेक दृश्य चित्रित किए गए हैं। प्रमुख उदाहरण हैं—

1. महाजनक जातक।
2. शिबि जातक।
3. विश्वंतर जातक।
4. अन्य नैतिक और धार्मिक कथाएँ।

इन कथाओं के माध्यम से बौद्ध धर्म के नैतिक सिद्धांतों का प्रचार किया गया।

(घ) बोधिसत्त्वों का चित्रण



अजंता की चित्रकला में बोधिसत्त्वों का विशेष स्थान है। बोधिसत्त्व वह आदर्श व्यक्तित्व है जो स्वयं मुक्ति प्राप्त करने के साथ-साथ अन्य प्राणियों के कल्याण के लिए भी कार्य करता है।

अजंता में पद्मपाणि और वज्रपाणि बोधिसत्त्व के चित्र विशेष रूप से प्रसिद्ध हैं।

पद्मपाणि बोधिसत्त्व: गुफा संख्या 1 में स्थित यह चित्र भारतीय चित्रकला की सर्वश्रेष्ठ कृतियों में से एक माना जाता है। इसमें बोधिसत्त्व को हाथ में कमल धारण किए हुए दिखाया गया है। चेहरे की शांति, आँखों की अभिव्यक्ति और आभूषणों की सज्जा अत्यंत प्रभावशाली है।

वज्रपाणि बोधिसत्त्व: यह चित्र शक्ति और संरक्षण का प्रतीक है। इसमें बोधिसत्त्व की गरिमा और गंभीरता को विशेष रूप से व्यक्त किया गया है।

(घ) सामाजिक जीवन

अजंता की चित्रकला का सबसे महत्त्वपूर्ण पक्ष यह है कि इसमें धार्मिक विषयों के साथ तत्कालीन सामाजिक जीवन का भी विस्तृत चित्रण मिलता है।

चित्रों में दिखाई देते हैं—

- राजदरबार और राजपरिवार।
- व्यापारी और सामान्य नागरिक।

- स्त्रियों के विविध सामाजिक रूप।
- वस्त्र एवं आभूषण।
- संगीतकार और नर्तक।
- उत्सव और समारोह।
- पशु-पक्षी तथा प्राकृतिक दृश्य।

इनसे तत्कालीन समाज की जीवनशैली, सामाजिक वर्गीकरण, आर्थिक समृद्धि और सांस्कृतिक गतिविधियों की जानकारी प्राप्त होती है।

6. अजंता चित्रकला की तकनीक

अजंता के चित्र मुख्यतः भित्तिचित्र तकनीक से बनाए गए। चट्टानों की सतह को चित्रण के योग्य बनाने के लिए पहले उस पर आधार परत तैयार की जाती थी। इसमें मिट्टी, रेशेदार पदार्थों तथा चूने आदि का प्रयोग किया जाता था। इसके बाद सतह को चिकना करके उस पर चित्रांकन किया जाता था।

अजंता के चित्रों को सामान्यतः टेम्परा अथवा फ्रेस्को-सेक्को जैसी तकनीकों से संबंधित माना जाता है। इन्हें पूरी तरह गीले प्लास्टर पर बने शुद्ध फ्रेस्को के रूप में समझना उचित नहीं है।

प्रमुख रंग

- लाल और गेरुआ।
- पीला।
- सफेद।
- हरा।
- काला।
- भूरे रंग के विभिन्न रूप।

रंगों का प्रयोग आकृतियों की गहराई, चेहरे के भाव और वस्त्रों की बनावट को प्रदर्शित करने के लिए किया गया।

7. अजंता चित्रकला की शैलीगत विशेषताएँ

1. रेखांकन की उत्कृष्टता: चित्रों में स्पष्ट, प्रवाहपूर्ण और लयात्मक रेखाओं का प्रयोग हुआ है।

2. भावाभिव्यक्ति: आँखों, चेहरे और शरीर की मुद्रा के माध्यम से भावनाओं को प्रभावशाली ढंग से व्यक्त किया गया है।

डॉ. राकेश मोहन नौटियाल

3. रंग संयोजन: रंगों में संतुलन और सामंजस्य दिखाई देता है।

4. त्रिआयामी प्रभाव: प्रकाश और छाया के प्रयोग से आकृतियों में गहराई उत्पन्न की गई है।

5. प्राकृतिकता: मानव शरीर, पशुओं और प्रकृति का चित्रण स्वाभाविक ढंग से किया गया है।

6. अलंकरण: वस्त्र, आभूषण, मुकुट और सजावटी तत्वों का अत्यंत सूक्ष्म चित्रण मिलता है।

7. कथात्मकता: एक ही चित्र में कथा के विभिन्न प्रसंगों को संयोजित करने की परंपरा दिखाई देती है।

8. अजंता चित्रकला का धार्मिक महत्त्व

अजंता की चित्रकला बौद्ध धर्म के महायान स्वरूप के विकास से विशेष रूप से जुड़ी है। इसमें बुद्ध को केवल ऐतिहासिक शिक्षक के रूप में नहीं, बल्कि आध्यात्मिक आदर्श और करुणा के प्रतीक के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

जातक कथाएँ नैतिक शिक्षा प्रदान करती हैं, जबकि बोधिसत्त्वों के चित्र परोपकार और करुणा के आदर्श को स्थापित करते हैं।

9. अजंता का ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक महत्त्व

अजंता की चित्रकला इतिहासकारों के लिए महत्वपूर्ण स्रोत है। इससे निम्नलिखित विषयों की जानकारी प्राप्त होती है—

- वाकाटक कालीन समाज।
- बौद्ध धर्म का विकास।
- तत्कालीन राजकीय संरक्षण।
- व्यापारिक गतिविधियाँ और दान परंपरा।
- वस्त्र एवं आभूषण।
- संगीत और नृत्य।
- स्थापत्य और चित्रकला तकनीक।
- भारत के सांस्कृतिक संपर्क।

10. संरक्षण एवं विश्व धरोहर का महत्त्व

अजंता की गुफाओं को 1983 में यूनेस्को की विश्व धरोहर सूची में शामिल किया गया। यहाँ के चित्र अत्यंत संवेदनशील हैं। नमी, तापमान, प्रकाश, मानव उपस्थिति और पर्यावरणीय परिवर्तन इनके संरक्षण को प्रभावित करते हैं।

इनके संरक्षण के लिए नियंत्रित प्रकाश व्यवस्था, पर्यटकों की संख्या का प्रबंधन, वैज्ञानिक संरक्षण और डिजिटल दस्तावेजीकरण आवश्यक हैं।

11. निष्कर्ष

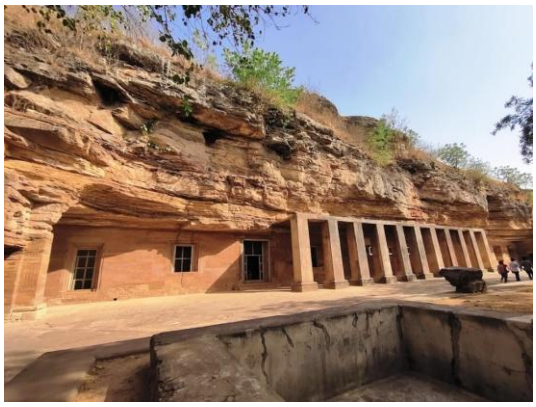
अजंता की गुफाएँ भारतीय चित्रकला के इतिहास की अनुपम धरोहर हैं। इनमें धार्मिक आस्था और लौकिक जीवन का सुंदर समन्वय दिखाई देता है। पद्मपाणि बोधिसत्त्व, वज्रपाणि और जातक कथाओं के चित्र भारतीय कलाकारों की कल्पनाशीलता, तकनीकी दक्षता तथा भावाभिव्यक्ति का उत्कृष्ट उदाहरण हैं।

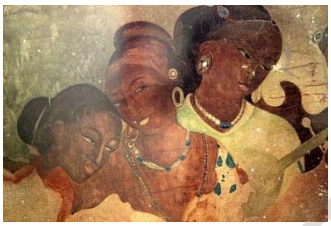
अजंता ने भारतीय चित्रकला को विश्व स्तर पर प्रतिष्ठा दिलाई। यह भारतीय सभ्यता, संस्कृति और कला के गौरवशाली इतिहास का महत्त्वपूर्ण प्रमाण है।

डॉ. राकेश मोहन नौटियाल

गुफा चित्रकला — बाघ

Bagh Cave Paintings | मध्य भारत की बौद्ध भित्तिचित्र परंपरा







1. प्रस्तावना

भारतीय चित्रकला के इतिहास में मध्य प्रदेश स्थित बाघ की गुफाओं का विशिष्ट स्थान है। ये गुफाएँ अपनी भित्तिचित्र परंपरा, बौद्ध स्थापत्य और मानवीय आकृतियों के प्रभावशाली चित्रण के लिए प्रसिद्ध हैं। बाघ की चित्रकला का विकास मुख्यतः गुप्तकालीन सांस्कृतिक वातावरण में हुआ। इस काल में भारतीय कला ने सौंदर्य, आध्यात्मिकता और भावाभिव्यक्ति के क्षेत्र में उल्लेखनीय प्रगति की।

बाघ की गुफाओं के चित्र अजंता की चित्रकला से कई दृष्टियों से समानता रखते हैं। दोनों स्थानों पर बौद्ध धर्म, जातक परंपरा और मानवीय जीवन से संबंधित विषयों का चित्रण मिलता है। फिर भी बाघ की चित्रकला की अपनी विशिष्ट शैली है, जिसमें सशक्त रेखांकन, प्रभावपूर्ण मानव आकृतियाँ और रंगों का गहरा प्रयोग विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

2. बाघ की गुफाओं की भौगोलिक स्थिति

बाघ की गुफाएँ मध्य प्रदेश के धार जिले में बाघिनी नदी के निकट स्थित हैं। ये विंध्य पर्वत क्षेत्र की चट्टानों को काटकर बनाई गई हैं। प्राकृतिक वातावरण और नदी के निकटता ने इस स्थान को बौद्ध भिक्षुओं के निवास तथा धार्मिक गतिविधियों के लिए उपयुक्त बनाया।

यहाँ की गुफाएँ मुख्यतः विहार स्वरूप की हैं। इनमें भिक्षुओं के निवास कक्ष, सभा कक्ष और धार्मिक गतिविधियों के लिए स्थान बनाए गए थे।

3. ऐतिहासिक पृष्ठभूमि एवं काल निर्धारण

बाघ की गुफाओं का विकास मुख्यतः पाँचवीं से छठी शताब्दी ईस्वी के मध्य माना जाता है। यह समय भारतीय इतिहास में गुप्तकालीन सांस्कृतिक उत्कर्ष का काल था।

इस समय उत्तर और मध्य भारत में बौद्ध धर्म, ब्राह्मण धर्म और जैन धर्म की परंपराएँ विद्यमान थीं। अनेक शासकों, स्थानीय अभिजात वर्ग और दानदाताओं ने धार्मिक संस्थाओं को संरक्षण प्रदान किया।

बाघ की गुफाएँ इसी धार्मिक और सांस्कृतिक वातावरण की उपज हैं। इनके निर्माण में बौद्ध मठवासी जीवन की आवश्यकताओं का ध्यान रखा गया था।

4. बाघ की गुफाओं की खोज एवं अध्ययन

बाघ की गुफाओं की जानकारी आधुनिक विद्वानों को उन्नीसवीं शताब्दी में मिली। इसके बाद पुरातत्त्वविदों और कला इतिहासकारों ने इनका अध्ययन किया। गुफाओं में प्राप्त चित्रों की प्रतिलिपियाँ तैयार की गईं और उनके संरक्षण के प्रयास किए गए।

समय के साथ प्राकृतिक क्षरण के कारण कई चित्र नष्ट हुए अथवा क्षतिग्रस्त हो गए। फिर भी बचे हुए चित्रों के अंश भारतीय चित्रकला के इतिहास के लिए अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं।

बाघ की गुफाओं में कुल नौ गुफाओं के अवशेष पहचाने गए हैं। इनमें से कुछ गुफाओं के नाम भी प्रचलित हैं, जैसे रंगमहल। रंगमहल विशेष रूप से चित्रकला के लिए प्रसिद्ध है।

5. बाघ की गुफाओं का स्थापत्य

बाघ की गुफाएँ मुख्यतः बौद्ध विहारों के रूप में निर्मित की गई थीं। इनका स्थापत्य चट्टानों को काटकर विकसित किया गया।

इनकी प्रमुख विशेषताएँ हैं—

1. विशाल केंद्रीय सभा कक्ष।
2. भिक्षुओं के निवास के लिए छोटे कक्ष।
3. स्तंभों का प्रयोग।
4. दीवारों पर भित्तिचित्र।
5. धार्मिक और सामूहिक गतिविधियों के लिए स्थान।
6. प्राकृतिक चट्टानों का उपयोग।

इन गुफाओं से बौद्ध मठों की संरचना तथा भिक्षुओं के सामूहिक जीवन की जानकारी मिलती है।

6. बाघ चित्रकला की विषय-वस्तु

बाघ की गुफाओं में धार्मिक और लौकिक दोनों प्रकार के विषयों का चित्रण मिलता है। यहाँ की चित्रकला में मानवीय जीवन और सामाजिक गतिविधियों को विशेष महत्त्व दिया गया है।

(क) बुद्ध एवं बौद्ध धर्म से संबंधित विषय



बाघ की गुफाओं में बौद्ध धर्म से संबंधित चित्रों के अवशेष मिलते हैं। इन चित्रों में बुद्ध, बोधिसत्त्व और बौद्ध धार्मिक परंपराओं से जुड़े विषय दिखाई देते हैं।

इनका उद्देश्य बौद्ध धर्म के नैतिक आदर्शों और आध्यात्मिक संदेश को चित्रों के माध्यम से अभिव्यक्त करना था।

(ख) मानव आकृतियाँ

बाघ चित्रकला की सबसे उल्लेखनीय विशेषता मानव आकृतियों का प्रभावपूर्ण चित्रण है। इनमें शरीर की बनावट, चेहरे के भाव और गतिविधियों को स्वाभाविक ढंग से व्यक्त किया गया है।

मानव आकृतियों में शारीरिक सुदृढ़ता और भावनात्मक अभिव्यक्ति का सुंदर समन्वय दिखाई देता है।

(ग) संगीत और नृत्य

बाघ की चित्रकला में संगीत और नृत्य से संबंधित दृश्य विशेष महत्त्व रखते हैं। इनमें कलाकारों, नर्तकों और संगीतकारों के चित्र मिलते हैं।

इन दृश्यों से तत्कालीन समाज में संगीत और नृत्य की लोकप्रियता तथा सांस्कृतिक जीवन की समृद्धि का पता चलता है।

(घ) राजदरबार और सामाजिक जीवन

बाघ के चित्रों में राजदरबार, समूह जीवन और सामाजिक गतिविधियों के दृश्य भी मिलते हैं। इनमें वस्त्र, आभूषण और मानवीय संबंधों का चित्रण तत्कालीन समाज की जीवनशैली के अध्ययन में सहायक है।

(ङ) सजावटी चित्र

डॉ. राकेश मोहन नौटियाल

गुफाओं की दीवारों पर पुष्प, लताएँ, ज्यामितीय आकृतियाँ और अन्य सजावटी रूपांकन भी बनाए गए थे। ये चित्र गुफाओं के आंतरिक भाग को सौंदर्यपूर्ण बनाते थे।

7. बाघ चित्रकला की तकनीक

बाघ की चित्रकला में भित्तिचित्र तकनीक का प्रयोग हुआ। चट्टान की दीवारों पर पहले आधार तैयार किया जाता था। इसके बाद उस पर रंगों की सहायता से चित्र बनाए जाते थे।

चित्र निर्माण में प्राकृतिक रंगों का उपयोग किया गया। लाल, गेरुआ, पीला, सफेद और भूरे रंग प्रमुख थे।

इन चित्रों में रंगों की परतों और रेखाओं का संतुलित प्रयोग दिखाई देता है। बाघ की चित्रकला में मानव आकृतियों की बाहरी रेखाओं को स्पष्ट और सशक्त बनाया गया है।

8. बाघ चित्रकला की प्रमुख विशेषताएँ

1. सशक्त रेखांकन: मानव आकृतियों की बाहरी सीमाओं को स्पष्ट रेखाओं से प्रदर्शित किया गया है।

2. प्रभावशाली मानव आकृतियाँ: शरीर की बनावट और चेहरे के भावों का सजीव चित्रण मिलता है।

3. रंगों की गहराई: लाल, गेरुआ और भूरे रंगों के प्रयोग से चित्रों में प्रभाव उत्पन्न किया गया है।

4. स्वाभाविकता: मानव आकृतियों में कृत्रिमता की अपेक्षा स्वाभाविकता दिखाई देती है।

5. भावनात्मक अभिव्यक्ति: चेहरे और शरीर की मुद्रा के माध्यम से भावनाओं को व्यक्त किया गया है।

6. सजावटी शैली: पुष्प और लताओं के रूपांकन चित्रों को सौंदर्यपूर्ण बनाते हैं।

7. अजंता से समानता: विषय-वस्तु और तकनीक के स्तर पर अजंता की चित्रकला से निकटता दिखाई देती है।

9. अजंता और बाघ चित्रकला का तुलनात्मक अध्ययन

अजंता और बाघ दोनों भारतीय भित्तिचित्र कला के महत्वपूर्ण केंद्र हैं। दोनों का संबंध बौद्ध धर्म से है और दोनों में मानव जीवन तथा धार्मिक कथाओं का चित्रण मिलता है।

आधार	**अजंता**	**बाघ**
स्थान	महाराष्ट्र	धार, मध्य प्रदेश
प्रमुख काल	दूसरी शताब्दी ई.पू. से छठी शताब्दी ई.	मुख्यतः पाँचवीं-छठी शताब्दी ई.
धार्मिक संबंध	बौद्ध धर्म	बौद्ध धर्म

प्रमुख विषय	जातक कथाएँ, बुद्ध जीवन, बोधिसत्त्व	बौद्ध विषय, मानव जीवन, संगीत एवं नृत्य
शैली	सूक्ष्म, लयात्मक और भावपूर्ण	सशक्त रेखांकन और प्रभावपूर्ण आकृतियाँ
प्रसिद्ध चित्र	पद्मपाणि और वज्रपाणि	रंगमहल के चित्र
संरक्षण की स्थिति	अनेक चित्र अपेक्षाकृत सुरक्षित	कई चित्र खंडित और क्षतिग्रस्त

10. बाघ चित्रकला का ऐतिहासिक महत्त्व

बाघ की चित्रकला तत्कालीन सामाजिक और सांस्कृतिक इतिहास का महत्त्वपूर्ण स्रोत है। इसके माध्यम से निम्न विषयों की जानकारी प्राप्त होती है—

- बौद्ध धर्म का प्रसार।
- गुप्तकालीन सांस्कृतिक वातावरण।
- संगीत और नृत्य की परंपराएँ।
- वस्त्र एवं आभूषण।
- मानव आकृतियों की कलात्मक परंपरा।
- मठवासी जीवन और धार्मिक संरक्षण।
- मध्य भारत की चित्रकला परंपरा।

11. संरक्षण की चुनौतियाँ

बाघ की गुफाओं के चित्र प्राकृतिक क्षरण और समय के प्रभाव से काफी प्रभावित हुए हैं। नमी, तापमान, जल रिसाव और चट्टानों की संरचनात्मक समस्याएँ इनके लिए चुनौती हैं।

इनके संरक्षण के लिए वैज्ञानिक रासायनिक उपचार, नियंत्रित वातावरण, डिजिटल प्रतिकृति, नियमित निगरानी और जनजागरूकता आवश्यक है।

12. निष्कर्ष

बाघ की गुफाएँ भारतीय चित्रकला की एक महत्त्वपूर्ण और विशिष्ट परंपरा का प्रतिनिधित्व करती हैं। इनके चित्रों में धार्मिक आस्था के साथ मानवीय जीवन, संगीत, नृत्य और सामाजिक गतिविधियों का सुंदर चित्रण मिलता है।

बाघ चित्रकला भारतीय कला में गुप्तकालीन सौंदर्यबोध, सशक्त रेखांकन और भावनात्मक अभिव्यक्ति का उत्कृष्ट उदाहरण है। अजंता के साथ मिलकर यह भारतीय भित्तिचित्र परंपरा की समृद्धि और विविधता को प्रदर्शित करती है।

डॉ. राकेश मोहन नौटियाल

बौद्ध कला — गांधार शैली एवं बुद्ध प्रतिमाएँ

Gandhara School of Art | ग्रीको-बौद्ध कला





1. प्रस्तावना

भारतीय मूर्तिकला के इतिहास में गांधार कला का विशिष्ट स्थान है। यह कला भारतीय धार्मिक परंपरा और यूनानी-रोमन कलात्मक प्रभावों के समन्वय का उत्कृष्ट उदाहरण है। गांधार कला का सबसे महत्त्वपूर्ण योगदान बुद्ध की मानव आकृति वाली प्रतिमाओं के विकास में माना जाता है।

प्रारंभिक बौद्ध कला में बुद्ध को प्रत्यक्ष मानव आकृति में प्रदर्शित करने की परंपरा व्यापक नहीं थी। उनके स्थान पर बोधिवृक्ष, धर्मचक्र, पदचिह्न, स्तूप और रिक्त सिंहासन जैसे प्रतीकों का प्रयोग किया जाता था। कुषाण काल में बुद्ध की मानव प्रतिमाओं का निर्माण व्यापक रूप से होने लगा। इस विकास में गांधार और मथुरा कला की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही।

गांधार कला ने बुद्ध के व्यक्तित्व को गंभीरता, शांति और आध्यात्मिक गरिमा के साथ प्रस्तुत किया।

2. गांधार का भौगोलिक परिचय

प्राचीन गांधार क्षेत्र उत्तर-पश्चिमी भारतीय उपमहाद्वीप में स्थित था। इसमें वर्तमान पाकिस्तान के पेशावर घाटी, स्वात क्षेत्र और अफगानिस्तान के कुछ भाग सम्मिलित थे।

गांधार का भौगोलिक स्थान अत्यंत महत्त्वपूर्ण था। यह मध्य एशिया, ईरान, भारतीय उपमहाद्वीप और पश्चिमी एशिया के बीच संपर्क क्षेत्र के रूप में कार्य करता था।

इस क्षेत्र से होकर व्यापारिक मार्ग गुजरते थे। परिणामस्वरूप यहाँ विभिन्न सभ्यताओं, धार्मिक विचारों और कलात्मक परंपराओं का आदान-प्रदान हुआ।

3. गांधार कला की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

गांधार क्षेत्र में विभिन्न राजनीतिक शक्तियों का शासन रहा। इनमें आकेमेनिड फारसी, यूनानी, इंडो-ग्रीक, शक, पार्थियन और कुषाण शासक प्रमुख थे।

सिकंदर के आक्रमण के बाद उत्तर-पश्चिम भारत में यूनानी प्रभाव बढ़ा। बाद में इंडो-ग्रीक शासकों के शासन ने इस क्षेत्र में यूनानी कला और संस्कृति के प्रभाव को मजबूत किया।

कुषाण शासकों के काल में गांधार कला का व्यापक विकास हुआ। विशेषकर कनिष्क के शासनकाल में बौद्ध धर्म और बौद्ध कला को महत्त्वपूर्ण संरक्षण मिला।

कुषाण साम्राज्य का विस्तार मध्य एशिया से उत्तर भारत तक था। इस विशाल राजनीतिक क्षेत्र ने सांस्कृतिक आदान-प्रदान को बढ़ावा दिया।

4. गांधार कला के विकास में कुषाण शासकों का योगदान

कुषाण शासकों ने बौद्ध धर्म तथा कला को संरक्षण दिया। कनिष्क का नाम इस संदर्भ में विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

कनिष्क के काल में बौद्ध धर्म का प्रसार मध्य एशिया तक हुआ। बौद्ध विहारों, स्तूपों और मूर्तियों के निर्माण को प्रोत्साहन मिला।

गांधार कला का विकास केवल राजकीय संरक्षण का परिणाम नहीं था। इसमें भिक्षुओं, व्यापारियों, स्थानीय दानदाताओं और शिल्पकारों का भी योगदान था।

5. गांधार कला पर विदेशी प्रभाव

गांधार कला को प्रायः ग्रीको-बौद्ध कला कहा जाता है। इसका कारण यह है कि इसमें भारतीय बौद्ध धार्मिक विषयों के साथ यूनानी और रोमन कला के रूपात्मक तत्व दिखाई देते हैं।

इन प्रभावों को निम्नलिखित रूपों में समझा जा सकता है—

- मानव शरीर का यथार्थवादी चित्रण।
- चेहरे की शारीरिक संरचना पर विशेष ध्यान।
- वस्त्रों में गहरी सिलवटें।
- घुँघराले बालों की शैली।
- शरीर की मांसपेशियों और अनुपातों का सूक्ष्म अंकन।
- कुछ सजावटी रूपांकनों में यूनानी-रोमन परंपरा का प्रभाव।

फिर भी गांधार कला की धार्मिक विषय-वस्तु मुख्यतः भारतीय बौद्ध परंपरा से संबंधित है। इसलिए इसे केवल विदेशी कला कहना उचित नहीं है। यह स्थानीय और अंतर-सांस्कृतिक परंपराओं का मिश्रित रूप है।

डॉ. मोहन नौटियाल

6. गांधार बुद्ध प्रतिमाओं का विकास

गांधार कला का सबसे बड़ा योगदान बुद्ध की मानव आकृति वाली प्रतिमाओं का विकास है।

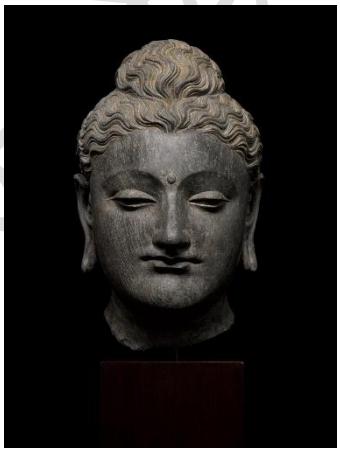
बुद्ध की प्रतिमाओं में कुछ विशिष्ट लक्षण विकसित हुए, जिन्हें बाद की बौद्ध कला में भी अपनाया गया।

प्रमुख लक्षण हैं—

1. उष्णीष — सिर के ऊपर उभरा हुआ भाग।
2. ऊर्णा — भौंहों के बीच स्थित विशेष चिह्न।
3. लंबे कान — राजसी जीवन के आभूषणों से संबंधित प्रतीकात्मक स्मृति।
4. शांत मुखमुद्रा।
5. विशिष्ट वस्त्र शैली।
6. अभय, ध्यान और धर्मचक्र प्रवर्तन जैसी मुद्राएँ।

7. गांधार बुद्ध प्रतिमाओं की प्रमुख विशेषताएँ

(क) मुखाकृति



गांधार बुद्ध प्रतिमाओं में चेहरे की बनावट यथार्थवादी दिखाई देती है। नाक, होंठ, आँखें और ठोड़ी को स्पष्ट रूप से उकेरा गया है।

चेहरे पर गंभीरता और आध्यात्मिक शांति का भाव मिलता है। कुछ प्रतिमाओं में यूनानी आदर्शों से प्रभावित शारीरिक सौंदर्य दिखाई देता है।

(ख) बालों की शैली

डॉ. राकेश चन्द्र नौटियाल

गांधार बुद्ध प्रतिमाओं में बाल प्रायः घुँघराले और व्यवस्थित रूप में दिखाए गए हैं। सिर पर उष्णीष का चित्रण भी मिलता है।

यह शैली गांधार बुद्ध प्रतिमाओं की पहचान बन गई।

(ख) वस्त्रों का अंकन



गांधार बुद्ध को प्रायः भारी चोगे जैसे वस्त्र पहने हुए दिखाया गया है। वस्त्रों में गहरी और स्पष्ट सिलवटें बनाई गई हैं।

यह विशेषता यूनानी और रोमन मूर्तिकला की वस्त्र परंपरा से प्रभावित मानी जाती है।

(घ) शारीरिक संरचना

गांधार प्रतिमाओं में शरीर की मांसपेशियों और शारीरिक अनुपातों का सूक्ष्म चित्रण मिलता है। कलाकारों ने मानव शरीर को प्राकृतिक और यथार्थवादी रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया।

(ङ) मुद्राएँ

गांधार बुद्ध प्रतिमाओं में निम्नलिखित मुद्राएँ प्रमुख हैं—

- अभय मुद्रा: निर्भयता और संरक्षण का प्रतीक।
- ध्यान मुद्रा: ध्यान और आध्यात्मिक साधना का प्रतीक।
- धर्मचक्र प्रवर्तन मुद्रा: बुद्ध के प्रथम उपदेश का प्रतीक।
- भूमिस्पर्श मुद्रा: ज्ञान प्राप्ति के क्षण का प्रतीक।

8. गांधार कला में प्रयुक्त सामग्री

डॉ. मदन मोहन नौटियाल

गांधार मूर्तिकला में मुख्यतः धूसर शिस्ट पत्थर का प्रयोग हुआ। इसके अतिरिक्त स्टुको और मिट्टी का भी उपयोग किया गया।

शिस्ट पत्थर अपेक्षाकृत आसानी से तराशा जा सकता था। इसलिए कलाकारों ने इससे सूक्ष्म विवरण, वस्त्रों की सिलवटें और चेहरे की विशेषताएँ निर्मित कीं।

स्टुको से निर्मित मूर्तियों में भी सजावटी और धार्मिक अभिव्यक्ति दिखाई देती है।

9. बुद्ध प्रतिमाओं के अतिरिक्त गांधार कला के विषय

गांधार कला केवल बुद्ध प्रतिमाओं तक सीमित नहीं थी। इसमें अनेक अन्य बौद्ध विषय भी शामिल थे।

- बुद्ध के जन्म का दृश्य।
- महाभिनिष्क्रमण।
- ज्ञान प्राप्ति।
- धर्मचक्र प्रवर्तन।
- महापरिनिर्वाण।
- जातक कथाएँ।
- बोधिसत्त्वों की प्रतिमाएँ।
- स्तूपों की सजावट।

इन दृश्यों के माध्यम से बौद्ध धर्म की शिक्षाओं को दृश्य रूप में प्रस्तुत किया गया।

10. गांधार कला का धार्मिक एवं सांस्कृतिक महत्त्व

गांधार कला ने बौद्ध धर्म के प्रसार में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। बुद्ध की प्रतिमाओं ने बौद्ध उपासना को नया दृश्यात्मक रूप प्रदान किया।

गांधार क्षेत्र से बौद्ध कला मध्य एशिया और आगे चीन तक पहुँची। इस प्रक्रिया में व्यापारिक मार्गों, भिक्षुओं और यात्रियों की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही।

इस कला ने विभिन्न सभ्यताओं के बीच सांस्कृतिक संपर्क को भी प्रदर्शित किया।

11. गांधार कला का ऐतिहासिक महत्त्व

गांधार कला इतिहासकारों को निम्न विषयों की जानकारी देती है—

1. कुषाण कालीन राजनीतिक और धार्मिक संरक्षण।
2. भारत और मध्य एशिया के सांस्कृतिक संबंध।

डॉ. राकेश मोहन नौटियाल

3. यूनानी-रोमन कलात्मक प्रभाव।
4. बौद्ध धर्म का अंतरराष्ट्रीय प्रसार।
5. मूर्तिकला की तकनीकी प्रगति।
6. धार्मिक प्रतीकों का विकास।

12. गांधार कला का मूल्यांकन

गांधार कला को भारतीय कला इतिहास में एक महत्त्वपूर्ण संक्रमणकालीन उपलब्धि माना जाता है। इसमें भारतीय धार्मिक विषय-वस्तु और बाहरी कलात्मक प्रभावों का समन्वय हुआ।

इसकी विशेषता यह है कि बुद्ध को मानवीय रूप में प्रस्तुत करते हुए भी उनकी आध्यात्मिक गरिमा को बनाए रखा गया। इस प्रकार गांधार कला ने धार्मिक कला को यथार्थवादी अभिव्यक्ति प्रदान की।

13. निष्कर्ष

गांधार कला भारतीय बौद्ध मूर्तिकला की अत्यंत महत्त्वपूर्ण परंपरा है। इसने बुद्ध की मानव आकृति वाली प्रतिमाओं के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया।

इसकी मूर्तियों में यूनानी-रोमन शैली का प्रभाव, वस्त्रों की स्पष्ट सिलवटें, घुँघराले बाल और गंभीर मुखमुद्रा विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

गांधार कला इस बात का प्रमाण है कि भारतीय कला ने बाहरी प्रभावों को आत्मसात करते हुए अपनी धार्मिक और सांस्कृतिक पहचान को बनाए रखा। यह भारतीय और विश्व कला इतिहास के बीच सांस्कृतिक संपर्क का महत्त्वपूर्ण उदाहरण है।

डॉ. राकेश मोहन गौतम

बौद्ध कला — मथुरा शैली एवं बुद्ध प्रतिमाएँ

Mathura School of Art | भारतीय स्वदेशी मूर्तिकला परंपरा







1. प्रस्तावना

भारतीय मूर्तिकला के विकास में मथुरा कला का अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्थान है। यह भारतीय कला की स्वदेशी परंपरा का प्रतिनिधित्व करती है। मथुरा में बौद्ध, जैन और ब्राह्मण धर्म से संबंधित मूर्तियों का निर्माण हुआ। विशेषकर कुषाण काल में मथुरा कला ने उल्लेखनीय उन्नति प्राप्त की।

मथुरा शैली की बुद्ध प्रतिमाएँ गांधार शैली की प्रतिमाओं से कई दृष्टियों से भिन्न हैं। जहाँ गांधार कला में यूनानी-रोमन प्रभाव दिखाई देता है, वहीं मथुरा कला में भारतीय धार्मिक और सांस्कृतिक परंपरा का प्रभाव प्रमुख है।

मथुरा कला में बुद्ध को आध्यात्मिक शक्ति, शांति और आंतरिक तेज से युक्त व्यक्तित्व के रूप में प्रस्तुत किया गया।

2. मथुरा का भौगोलिक एवं ऐतिहासिक परिचय

मथुरा उत्तर प्रदेश में यमुना नदी के तट पर स्थित एक प्राचीन नगर है। यह प्राचीन काल से ही धार्मिक, व्यापारिक और सांस्कृतिक केंद्र रहा है।

मथुरा का संबंध बौद्ध, जैन और ब्राह्मण तीनों धार्मिक परंपराओं से रहा है। यहाँ प्राचीन काल में अनेक स्तूप, विहार, मंदिर और मूर्तिकला केंद्र विकसित हुए।

मथुरा की भौगोलिक स्थिति इसे उत्तर भारत के प्रमुख व्यापारिक मार्गों से जोड़ती थी। इस कारण यहाँ व्यापारियों, शिल्पकारों और धार्मिक समुदायों का आवागमन बना रहता था।

3. मथुरा कला की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

मथुरा में मूर्तिकला की परंपरा कुषाण काल से पहले भी विद्यमान थी। मौर्य काल में यहाँ यक्ष-यक्षिणी परंपरा और लोकधार्मिक मूर्तियों के प्रमाण मिलते हैं।

शुंग और अन्य उत्तर-मौर्य कालीन चरणों में भी मूर्तिकला का विकास हुआ। लेकिन कुषाण काल में मथुरा कला का विशेष उत्कर्ष हुआ।

कुषाण शासकों ने धार्मिक संस्थाओं और शिल्पकारों को संरक्षण दिया। इस काल में बौद्ध, जैन और ब्राह्मण धर्म की अनेक प्रतिमाएँ बनाई गईं।

4. मथुरा कला का स्वदेशी स्वरूप

मथुरा कला को भारतीय स्वदेशी मूर्तिकला परंपरा का महत्त्वपूर्ण उदाहरण माना जाता है। इसकी जड़ें यक्ष-यक्षिणी की प्राचीन प्रतिमा परंपरा में देखी जा सकती हैं।

मथुरा के कलाकारों ने मानव शरीर को सुदृढ़, पुष्ट और ऊर्जावान रूप में प्रस्तुत किया। प्रतिमाओं में आध्यात्मिकता के साथ जीवन शक्ति का भाव भी दिखाई देता है।

इस कला में बाहरी प्रभावों की अपेक्षा स्थानीय कलात्मक परंपराओं का प्रभाव अधिक है।

5. मथुरा बुद्ध प्रतिमाओं का विकास

कुषाण काल में बुद्ध की मानव आकृति वाली प्रतिमाओं का निर्माण व्यापक रूप से हुआ। मथुरा इस विकास का एक प्रमुख केंद्र था।

बुद्ध की प्रतिमाओं में कुछ विशेष लक्षण विकसित हुए—

- उष्णीष।
- ऊर्णा।
- लंबे कान।
- शांत एवं तेजस्वी मुखमंडल।
- अभय मुद्रा।
- ध्यान मुद्रा।
- धर्मचक्र प्रवर्तन मुद्रा।

मथुरा शैली में बुद्ध को आध्यात्मिक गुरु के रूप में प्रस्तुत किया गया, जिनके व्यक्तित्व में शांति और शक्ति का समन्वय है।

6. मथुरा बुद्ध प्रतिमाओं की प्रमुख विशेषताएँ

(क) निर्माण सामग्री

Smarthistory – A Buddha from Mathura

smarthistory.org

मथुरा शैली की सबसे प्रमुख पहचान लाल चित्तीदार बलुआ पत्थर है। यह पत्थर मथुरा और उसके आसपास के क्षेत्र में उपलब्ध था।

इस पत्थर से निर्मित मूर्तियों में एक विशिष्ट रंग और सतही बनावट दिखाई देती है।

(ख) शारीरिक संरचना

मथुरा बुद्ध प्रतिमाओं का शरीर सुदृढ़, पुष्ट और प्रभावशाली होता है। छाती चौड़ी, कंधे मजबूत और शरीर का अनुपात संतुलित दिखाई देता है।

इस शैली में मानव शरीर की शक्ति और आध्यात्मिक ऊर्जा का समन्वय मिलता है।

(ग) मुखमंडल

मथुरा बुद्ध के चेहरे पर शांति, करुणा और आध्यात्मिक तेज दिखाई देता है। चेहरे की बनावट में स्वाभाविकता के साथ आदर्श सौंदर्य का समन्वय है।

(घ) वस्त्रों का चित्रण

मथुरा बुद्ध प्रतिमाओं में वस्त्र प्रायः शरीर से चिपके हुए अथवा अत्यंत हल्के रूप में दिखाए गए हैं। कई प्रतिमाओं में वस्त्रों की सिलवटें बहुत कम स्पष्ट होती हैं।

यह गांधार कला की भारी चोगे जैसी वस्त्र शैली से भिन्न है।

(ङ) केश विन्यास

मथुरा बुद्ध प्रतिमाओं में सिर पर उष्णीष का चित्रण मिलता है। बालों की शैली में छोटे घुँघराले बाल अथवा व्यवस्थित केश रूप दिखाई दे सकते हैं।

(च) मुद्राएँ

मथुरा बुद्ध प्रतिमाओं में विभिन्न धार्मिक मुद्राओं का प्रयोग हुआ—

1. अभय मुद्रा।

डॉ. मोहन बौरियाल

2. ध्यान मुद्रा।

3. धर्मचक्र प्रवर्तन मुद्रा।

4. भूमिस्पर्श मुद्रा।

इन मुद्राओं के माध्यम से बुद्ध की शिक्षाओं और आध्यात्मिक जीवन के विभिन्न पक्षों को व्यक्त किया गया।

7. मथुरा कला में बुद्ध के अतिरिक्त अन्य प्रतिमाएँ

मथुरा कला की विशेषता यह है कि यहाँ केवल बुद्ध की प्रतिमाएँ नहीं बनाई गईं, बल्कि विभिन्न धार्मिक परंपराओं की मूर्तियाँ भी विकसित हुईं।

(क) जैन प्रतिमाएँ

मथुरा में जैन तीर्थंकरों की अनेक प्रतिमाएँ प्राप्त हुई हैं। इनमें तीर्थंकरों को ध्यानमग्न और आध्यात्मिक मुद्रा में दिखाया गया है।

मथुरा जैन कला का भी एक प्रमुख केंद्र था। यहाँ से प्राप्त अभिलेख जैन समुदायों और दानदाताओं की जानकारी देते हैं।

(ख) यक्ष एवं यक्षिणी

मथुरा की प्राचीन मूर्तिकला में यक्ष और यक्षिणी प्रतिमाओं का विशेष महत्त्व है। इन प्रतिमाओं में लोकधार्मिक विश्वासों और प्रकृति से जुड़े प्रतीकों का चित्रण मिलता है।

(ग) ब्राह्मण धर्म की प्रतिमाएँ

मथुरा में विष्णु, शिव और अन्य देवी-देवताओं से संबंधित प्रतिमाओं का निर्माण भी हुआ। इससे स्पष्ट होता है कि यह नगर अनेक धार्मिक परंपराओं का साझा कलात्मक केंद्र था।

8. मथुरा कला की शैलीगत विशेषताएँ

1. स्वदेशी प्रभाव: भारतीय परंपरा और स्थानीय शिल्प का प्रभाव।

2. लाल बलुआ पत्थर: विशिष्ट निर्माण सामग्री।

3. सुदृढ़ शरीर: शक्तिशाली और पुष्ट मानव आकृतियाँ।

4. आध्यात्मिक मुखमुद्रा: शांति और तेज का समन्वय।

5. प्रतीकात्मकता: उष्णीष, ऊर्णा और विभिन्न मुद्राओं का प्रयोग।

6. धार्मिक विविधता: बौद्ध, जैन और ब्राह्मण धर्म की मूर्तियों का निर्माण।

7. गुप्त कला पर प्रभाव: मथुरा की मूर्तिकला ने आगे चलकर गुप्तकालीन बुद्ध प्रतिमाओं के विकास में योगदान दिया।

9. मथुरा कला का धार्मिक एवं सामाजिक महत्त्व

मथुरा कला से तत्कालीन धार्मिक जीवन की विविधता का पता चलता है। यहाँ बौद्ध, जैन और ब्राह्मण धर्मों की प्रतिमाएँ एक ही कलात्मक परंपरा के अंतर्गत विकसित हुईं।

यह कला दानदाताओं, व्यापारियों, भिक्षुओं और स्थानीय समुदायों के योगदान को भी प्रदर्शित करती है।

मथुरा की मूर्तियों और अभिलेखों से धार्मिक संस्थाओं, सामाजिक संगठनों और आर्थिक गतिविधियों की जानकारी मिलती है।

10. गांधार और मथुरा कला का तुलनात्मक अध्ययन

आधार	**गांधार कला**	**मथुरा कला**
क्षेत्र	उत्तर-पश्चिमी क्षेत्र	उत्तर प्रदेश का मथुरा
प्रमुख काल	कुषाण काल	कुषाण काल
प्रभाव	यूनानी-रोमन	भारतीय स्वदेशी
सामग्री	धूसर शिस्ट, स्टुको	लाल चित्तीदार बलुआ पत्थर
शरीर	यथार्थवादी और शारीरिक विवरणयुक्त	पुष्ट और सुदृढ़
वस्त्र	भारी, स्पष्ट सिलवटें	हल्के, शरीर से सटे
मुखमंडल	गंभीर और शांत	तेजस्वी और आध्यात्मिक
योगदान	बौद्ध प्रतिमा परंपरा का विकास	भारतीय बुद्ध प्रतिमा शैली का विकास

11. मथुरा कला का भारतीय कला पर प्रभाव

मथुरा कला ने भारतीय मूर्तिकला के विकास को नई दिशा दी। इसने बुद्ध की प्रतिमाओं को भारतीय सौंदर्यबोध के अनुरूप स्वरूप प्रदान किया।

गुप्तकालीन बुद्ध प्रतिमाओं में मथुरा की परंपरा का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। गुप्त कलाकारों ने मथुरा शैली की शारीरिक संरचना और आध्यात्मिक अभिव्यक्ति को और अधिक परिष्कृत रूप प्रदान किया।

मथुरा कला का प्रभाव उत्तर भारत की बाद की मूर्तिकला परंपराओं में भी देखा जा सकता है।

12. निष्कर्ष

मथुरा कला भारतीय मूर्तिकला की स्वदेशी परंपरा का उत्कृष्ट उदाहरण है। इस कला में बुद्ध की प्रतिमाओं को सुदृढ़ शरीर, शांत मुखमंडल और आध्यात्मिक तेज के साथ प्रस्तुत किया गया।

मथुरा कला की विशेषता यह है कि इसमें बौद्ध, जैन और ब्राह्मण धार्मिक परंपराओं का समानांतर विकास दिखाई देता है। इसने गुप्तकालीन मूर्तिकला और भारतीय धार्मिक प्रतिमा परंपरा के विकास के लिए महत्त्वपूर्ण आधार तैयार किया।

डॉ. राकेश मोहन नौटियाल

ब्राह्मण कला — एलोरा की गुफाओं की मूर्तियाँ

Ellora Cave Sculptures | भारतीय हिंदू मूर्तिकला एवं शैल स्थापत्य







1. प्रस्तावना

भारतीय कला के विकास में ब्राह्मण अथवा हिंदू कला का अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्थान है। इस कला का विकास वैदिक धार्मिक परंपराओं, पुराणों, महाकाव्यों और भारतीय दर्शन के प्रभाव में हुआ। इसमें ब्रह्मा, विष्णु, शिव, शक्ति, गणेश, सूर्य और अन्य देवी-देवताओं की प्रतिमाओं का निर्माण किया गया।

भारतीय मूर्तिकला में गुप्तकाल से ब्राह्मण धार्मिक प्रतिमाओं का उल्लेखनीय विकास दिखाई देता है। इसके बाद उत्तर-गुप्त और प्रारंभिक मध्यकाल में मंदिर स्थापत्य तथा मूर्तिकला ने अत्यंत विकसित रूप प्राप्त किया।

महाराष्ट्र स्थित एलोरा की गुफाएँ इस विकास की उत्कृष्ट उपलब्धि हैं। यहाँ बौद्ध, ब्राह्मण और जैन धर्म से संबंधित गुफाएँ एक ही परिसर में स्थित हैं। एलोरा की ब्राह्मण गुफाओं में शिव, विष्णु, देवी और अन्य देवताओं की विशाल तथा कलात्मक मूर्तियाँ निर्मित की गई हैं।

इनमें कैलाश मंदिर विशेष रूप से उल्लेखनीय है, जो भारतीय शैल स्थापत्य और मूर्तिकला का अद्वितीय उदाहरण है।

2. ब्राह्मण कला का अर्थ एवं स्वरूप

ब्राह्मण कला से आशय उन कलात्मक अभिव्यक्तियों से है जिनका विकास वैदिक तथा पुराण-आधारित धार्मिक परंपराओं के अंतर्गत हुआ। आधुनिक कला इतिहास में इसके लिए प्रायः हिंदू कला शब्द का भी प्रयोग किया जाता है।

इस कला में देवी-देवताओं के विभिन्न स्वरूपों के माध्यम से धार्मिक और दार्शनिक अवधारणाओं को व्यक्त किया गया।

ब्राह्मण कला के प्रमुख विषय निम्नलिखित हैं—

1. ब्रह्मा — सृष्टि के सृजनकर्ता।
2. विष्णु — सृष्टि के पालनकर्ता।
3. शिव — सृष्टि, स्थिति और संहार से संबंधित देवता।
4. देवी अथवा शक्ति — सृजनात्मक और संरक्षणकारी शक्ति।
5. गणेश — विघ्नहर्ता और बुद्धि के देवता।
6. सूर्य — प्रकाश और ऊर्जा के प्रतीक।
7. स्कंद या कार्तिकेय — युद्ध और शक्ति के देवता।

इन देवताओं की मूर्तियों में धार्मिक प्रतीकों, मुद्राओं, आयुधों और वाहनों का विशेष महत्त्व होता है।

3. एलोरा की भौगोलिक स्थिति

एलोरा की गुफाएँ महाराष्ट्र के छत्रपति संभाजीनगर जिले में स्थित हैं। ये सह्याद्रि पर्वतीय क्षेत्र की बेसाल्ट चट्टानों को काटकर बनाई गई हैं।

एलोरा प्राचीन काल में धार्मिक और सांस्कृतिक गतिविधियों का महत्त्वपूर्ण केंद्र था। यहाँ प्राकृतिक चट्टानों का उपयोग करके विशाल गुफाओं, मंदिरों, स्तंभों और मूर्तियों का निर्माण किया गया।

एलोरा की गुफाएँ भारतीय शैल स्थापत्य की उत्कृष्ट परंपरा को प्रदर्शित करती हैं।

4. एलोरा की गुफाओं की खोज एवं ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

एलोरा की गुफाएँ आधुनिक काल में पुरातत्त्वविदों और इतिहासकारों के अध्ययन का प्रमुख विषय बनीं। इनके निर्माण का इतिहास कई शताब्दियों में फैला हुआ है।

इनका विकास मुख्यतः पाँचवीं से दसवीं शताब्दी ईस्वी के बीच हुआ। इस दौरान दक्कन क्षेत्र में विभिन्न राजवंशों का शासन रहा।

एलोरा के विकास में चालुक्य और राष्ट्रकूट शासकों सहित विभिन्न क्षेत्रीय शक्तियों तथा दानदाताओं का योगदान रहा। विशेष रूप से राष्ट्रकूट शासकों ने यहाँ के स्थापत्य और मूर्तिकला को संरक्षण दिया।

डॉ. रक्षित मोहन नौटियाल

5. एलोरा की गुफाओं का धार्मिक वर्गीकरण

एलोरा में कुल 34 प्रमुख गुफाएँ हैं। इन्हें धार्मिक आधार पर तीन वर्गों में विभाजित किया जाता है।

गुफाएँ	धार्मिक परंपरा	प्रमुख विशेषता
1–12	बौद्ध	विहार, चैत्यगृह एवं बुद्ध प्रतिमाएँ
13–29	ब्राह्मण अथवा हिंदू	शिव, विष्णु और देवी की मूर्तियाँ
30–34	जैन	तीर्थंकर प्रतिमाएँ एवं जैन धार्मिक प्रतीक

यह वर्गीकरण भारतीय धार्मिक विविधता और कलात्मक सह-अस्तित्व का प्रमाण है।

6. एलोरा की ब्राह्मण गुफाओं का स्थापत्य

एलोरा की ब्राह्मण गुफाओं में मंदिर, मंडप, स्तंभ, गर्भगृह और विभिन्न धार्मिक मूर्तियों का निर्माण किया गया।

इन गुफाओं में शैल स्थापत्य का अत्यंत विकसित रूप दिखाई देता है। कलाकारों ने कठोर चट्टानों को काटकर विशाल धार्मिक संरचनाएँ निर्मित कीं।

प्रमुख स्थापत्य विशेषताएँ हैं—

- चट्टानों को काटकर मंदिर निर्माण।
- स्तंभयुक्त मंडप।
- गर्भगृह में देवी-देवताओं की प्रतिमाएँ।
- दीवारों पर पौराणिक कथाओं का चित्रण।
- विशाल शिल्प पट्टिकाएँ।
- मूर्तियों में गहराई और त्रिआयामी प्रभाव।
- स्थापत्य और मूर्तिकला का समन्वय।

7. कैलाश मंदिर : एलोरा की सर्वोच्च कलात्मक उपलब्धि



डॉ. मोहन चौरसिया



एलोरा की गुफा संख्या 16 में स्थित कैलाश मंदिर भारतीय कला और स्थापत्य की अद्वितीय उपलब्धि है। यह भगवान शिव को समर्पित है।

इसका निर्माण राष्ट्रकूट शासक कृष्ण प्रथम के शासनकाल में आठवीं शताब्दी के दौरान कराया गया माना जाता है।

कैलाश मंदिर को एक ही विशाल चट्टान को काटकर बनाया गया है। इसी कारण इसे एकाश्म मंदिर कहा जाता है। इसका निर्माण ऊपर से नीचे की ओर चट्टान को काटते हुए किया गया था।

(क) स्थापत्य योजना

कैलाश मंदिर में मुख्य मंदिर, मंडप, नंदी मंडप, प्रवेशद्वार, स्तंभ और विशाल प्रांगण का निर्माण किया गया है।

मंदिर की संरचना कैलाश पर्वत की पौराणिक कल्पना पर आधारित है। इसमें शिव के निवास स्थान को भव्य स्थापत्य रूप दिया गया है।

(ख) निर्माण तकनीक

कैलाश मंदिर की सबसे बड़ी विशेषता इसकी निर्माण तकनीक है। इसे सामान्य मंदिरों की तरह अलग-अलग पत्थरों को जोड़कर नहीं बनाया गया, बल्कि एक विशाल चट्टान को काटकर संपूर्ण संरचना निर्मित की गई।

इस कार्य के लिए अत्यंत कुशल शिल्पकारों, वास्तुकारों और श्रमिकों की आवश्यकता रही होगी। इससे तत्कालीन तकनीकी ज्ञान और संगठन क्षमता का पता चलता है।

(ग) मूर्तिकला

कैलाश मंदिर की दीवारों और स्तंभों पर अनेक देवी-देवताओं की मूर्तियाँ निर्मित हैं। इनमें शिव, पार्वती, विष्णु, ब्रह्मा, गणेश, दुर्गा और अन्य पौराणिक पात्रों का चित्रण मिलता है।

मूर्तियों में धार्मिक भावनाओं के साथ गति, शक्ति और नाटकीयता का प्रभावशाली समन्वय है।

8. एलोरा की प्रमुख मूर्तियाँ एवं पौराणिक दृश्य

(क) रावण द्वारा कैलाश पर्वत को हिलाना

एलोरा की सबसे प्रसिद्ध मूर्तिकृतियों में रावण द्वारा कैलाश पर्वत को हिलाने का दृश्य शामिल है। इस दृश्य में रावण अपनी शक्ति का प्रदर्शन करते हुए कैलाश पर्वत को उठाने का प्रयास करता है।

डॉ. राकेश मोहन नौटियाल

पर्वत के ऊपर भगवान शिव और माता पार्वती विराजमान हैं। शिव अपने पैर से पर्वत को दबाकर रावण के प्रयास को विफल कर देते हैं।

इस मूर्तिकृति में कई स्तरों पर गतिविधियों का चित्रण मिलता है। रावण की शारीरिक शक्ति, शिव की स्थिरता और पार्वती की प्रतिक्रिया को प्रभावशाली ढंग से व्यक्त किया गया है।

यह मूर्ति शिल्पकारों की कल्पनाशीलता, तकनीकी दक्षता और पौराणिक विषयों की समझ का उत्कृष्ट उदाहरण है।

(ख) शिव-पार्वती विवाह



शिव और पार्वती के विवाह का दृश्य भारतीय धार्मिक एवं सांस्कृतिक परंपरा में महत्वपूर्ण है। एलोरा की मूर्तियों में इस प्रसंग के माध्यम से विवाह संस्कार, धार्मिक आस्था और पारिवारिक जीवन की अवधारणाओं को प्रस्तुत किया गया है।

इस प्रकार की मूर्तियाँ तत्कालीन समाज की धार्मिक मान्यताओं और सांस्कृतिक परंपराओं को समझने में सहायक हैं।

(ग) महिषासुरमर्दिनी दुर्गा



एलोरा की गुफाओं में देवी दुर्गा के महिषासुरमर्दिनी स्वरूप का चित्रण मिलता है। इसमें देवी को महिषासुर नामक असुर का वध करते हुए दिखाया गया है।

यह दृश्य शक्ति, साहस और धर्म की विजय का प्रतीक है। देवी के अनेक हाथों में विभिन्न आयुध दिखाए गए हैं। मूर्ति में युद्ध की गति और देवी की शक्ति का प्रभावशाली चित्रण मिलता है।

(घ) नटराज शिव



नटराज शिव भारतीय कला की अत्यंत महत्वपूर्ण धार्मिक एवं दार्शनिक अवधारणा हैं। नटराज का तांडव सृष्टि, स्थिति और संहार की प्रक्रिया का प्रतीक माना जाता है।

एलोरा की मूर्तियों में शिव के नृत्य रूप के माध्यम से गति, लय और ब्रह्मांडीय ऊर्जा को व्यक्त किया गया है।

(ङ) विष्णु के अवतार



एलोरा की ब्राह्मण गुफाओं में विष्णु के विभिन्न रूपों और अवतारों का चित्रण भी मिलता है। इनमें वराह और नरसिंह जैसे अवतार विशेष महत्त्व रखते हैं।

वराह अवतार: इसमें विष्णु को पृथ्वी को जल से उद्धार करते हुए दिखाया गया है। यह धर्म की पुनर्स्थापना और पृथ्वी के संरक्षण का प्रतीक है।

नरसिंह अवतार: इसमें विष्णु को आधे मनुष्य और आधे सिंह के रूप में प्रदर्शित किया गया है। यह भक्त प्रह्लाद की रक्षा तथा अधर्म के विनाश का प्रतीक है।

9. एलोरा की मूर्तिकला की शैलीगत विशेषताएँ

1. विशालता: एलोरा की मूर्तियाँ अपने विशाल आकार और प्रभावशाली स्वरूप के लिए प्रसिद्ध हैं।

2. त्रिआयामी प्रभाव: मूर्तियों को चट्टानों से इस प्रकार काटा गया है कि उनमें गहराई और वास्तविकता का अनुभव होता है।

3. गतिशीलता: युद्ध, नृत्य और पौराणिक दृश्यों में शरीर की गति का सुंदर चित्रण मिलता है।

4. धार्मिक प्रतीकात्मकता: प्रत्येक देवी-देवता को उनके विशिष्ट आयुध, वाहन और मुद्राओं के माध्यम से पहचाना जा सकता है।

5. भावाभिव्यक्ति: मूर्तियों में क्रोध, करुणा, शांति, वीरता और भक्ति जैसे भाव व्यक्त किए गए हैं।

6. स्थापत्य एवं मूर्तिकला का समन्वय: यहाँ मंदिर की संरचना और मूर्तिकला एक-दूसरे के पूरक हैं।

7. कथात्मक शैली: रामायण, महाभारत और पुराणों की कथाओं को दृश्यात्मक रूप में प्रस्तुत किया गया है।

10. एलोरा की ब्राह्मण कला का धार्मिक एवं दार्शनिक महत्त्व

एलोरा की मूर्तियाँ भारतीय धर्म और दर्शन की अनेक अवधारणाओं को व्यक्त करती हैं।

शिव की मूर्तियों में सृष्टि, संहार और तपस्या का भाव दिखाई देता है। विष्णु की मूर्तियों में संरक्षण और धर्म की स्थापना की अवधारणा व्यक्त होती है। देवी की मूर्तियों में शक्ति और प्रकृति के सृजनात्मक स्वरूप का चित्रण मिलता है।

इन मूर्तियों के माध्यम से भारतीय समाज के धार्मिक विश्वासों और पौराणिक परंपराओं को समझा जा सकता है।

11. एलोरा की कला का सामाजिक एवं राजनीतिक महत्त्व

एलोरा की गुफाओं के निर्माण में शासकों, स्थानीय अभिजात वर्ग, धार्मिक संस्थाओं और शिल्पकारों का योगदान रहा।

कैलाश मंदिर जैसे विशाल निर्माण से राष्ट्रकूट शासकों की राजनीतिक शक्ति, आर्थिक संसाधनों और धार्मिक संरक्षण की नीति का पता चलता है।

इन स्मारकों से तत्कालीन समाज की निम्नलिखित विशेषताएँ स्पष्ट होती हैं—

- राजकीय संरक्षण और धार्मिक संस्थाएँ।
- शिल्पकारों का संगठन।
- निर्माण तकनीक और श्रम विभाजन।
- धार्मिक दान की परंपरा।
- पुराणों और महाकाव्यों का सांस्कृतिक प्रभाव।
- मंदिरों का सामाजिक एवं धार्मिक जीवन में महत्त्व।

12. एलोरा में धार्मिक सह-अस्तित्व

एलोरा की सबसे महत्त्वपूर्ण विशेषताओं में से एक यह है कि यहाँ बौद्ध, ब्राह्मण और जैन धर्म से संबंधित गुफाएँ एक ही क्षेत्र में विकसित हुईं।

यह तथ्य भारतीय धार्मिक इतिहास में विविधता और सांस्कृतिक संपर्क को दर्शाता है। विभिन्न धार्मिक परंपराओं ने यहाँ अपनी स्थापत्य और मूर्तिकला संबंधी उपलब्धियाँ प्रस्तुत कीं।

इसलिए एलोरा केवल एक धार्मिक स्थल नहीं, बल्कि भारतीय सांस्कृतिक बहुलता और कलात्मक सह-अस्तित्व का भी प्रतीक है।

13. एलोरा की गुफाओं का संरक्षण एवं विश्व धरोहर

एलोरा की गुफाओं को 1983 में यूनेस्को की विश्व धरोहर सूची में शामिल किया गया।

इन स्मारकों के संरक्षण की प्रमुख चुनौतियाँ हैं—

1. चट्टानों का प्राकृतिक क्षरण।
2. तापमान और नमी में परिवर्तन।

डॉ. मनोज मोहन नौटियाल

3. जल का रिसाव।
4. पर्यटकों की अधिक संख्या।
5. प्रदूषण और मानवीय हस्तक्षेप।

इनके संरक्षण के लिए भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण द्वारा वैज्ञानिक उपाय किए जाते हैं। नियमित निगरानी, संरचनात्मक संरक्षण, जल निकासी व्यवस्था और नियंत्रित पर्यटन आवश्यक हैं।

14. भारतीय कला के विकास में एलोरा का योगदान

एलोरा की गुफाएँ भारतीय शैल स्थापत्य और मूर्तिकला की उच्चतम उपलब्धियों में सम्मिलित हैं।

इनका योगदान निम्नलिखित रूपों में देखा जा सकता है—

- एकाश्म मंदिर निर्माण की उत्कृष्ट तकनीक।
- विशाल मूर्तिकला का विकास।
- पौराणिक कथाओं का दृश्यात्मक चित्रण।
- धार्मिक प्रतीकों और प्रतिमाओं का परिष्कृत स्वरूप।
- स्थापत्य और मूर्तिकला का समन्वय।
- भारतीय धार्मिक विविधता का कलात्मक प्रतिनिधित्व।
- मध्यकालीन मंदिर स्थापत्य के विकास में योगदान।

15. निष्कर्ष

एलोरा की गुफाएँ भारतीय ब्राह्मण अथवा हिंदू कला की उत्कृष्ट उपलब्धियों में से एक हैं। यहाँ की मूर्तियों में धार्मिक आस्था, पौराणिक कथाओं, दार्शनिक चिंतन और तकनीकी दक्षता का अद्भुत समन्वय दिखाई देता है।

कैलाश मंदिर भारतीय शिल्पकारों की प्रतिभा और स्थापत्य कौशल का अद्वितीय उदाहरण है। रावण द्वारा कैलाश पर्वत को हिलाने का दृश्य, नटराज शिव, महिषासुरमर्दिनी और विष्णु के अवतारों की मूर्तियाँ भारतीय मूर्तिकला की समृद्ध परंपरा को प्रदर्शित करती हैं।

इस प्रकार एलोरा की कला भारतीय सभ्यता के धार्मिक, सामाजिक और सांस्कृतिक इतिहास का महत्त्वपूर्ण स्रोत है। यह भारतीय कलाकारों की कल्पनाशीलता, तकनीकी दक्षता और सौंदर्यबोध का विश्वस्तरीय प्रमाण प्रस्तुत करती है।

डॉ. मोहन चौरसिया